thearyasamaj.org

ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जनवरी २०१५

Date of Printing = 05-01-15
प्रकाशन दिनांक= 05-01-15

वर्ष ४४ : अङ्क ३
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : पौष-माघ २०७१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११५

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व प्रबन्ध सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, नया बांस, मन्दिर वाली गली,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०६२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

- ❑ प्यारी बहना — २
- ❑ वेदोपदेश — ३
- ❑ सम्पादकीय - धर्म परिवर्तन... — 4
- ❑ डॉ. निरुपण.... — 6
- ❑ एक और पाखण्ड — 7
- ❑ बौद्ध दर्शन.... — 10
- ❑ छान्दोग्य..... — 15
- ❑ पत्रों के आईने में.... — 18
- ❑ स्वामी श्रद्धानन्द — 21

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

thearyasamaj.org

"प्यारी बहना"

(राजेश बरनवाल, धनबाद, मो- 09431191505)

दूर, बहुत दूर पर,
लड़कियों का एक झुण्ड, आते देखा।
लड़कियाँ क्या? वो तो थी,
हँसती-खिलखिलाती, परियों-सरीखा।।

मदमाती, मटकाती, अंखियों की मल्लिका,
नटखट एवम्, शोख अदाओं वाली चंचल।
मेरी दृष्टि को, खींच लेती बरबस,
अपनी शोख अदाओं से, वह पल-पल।।

मेरे नेत्र-द्वय, उठते और गिरते,
मानो, मेरे साथ ही वह छल करते।
उन नव-यौवनाओं की, सौन्दर्य-राशि,
मानों, मेरे लिए, बन गई मथुरा-काशी।।

उन नवयौवनाओं, के मध्य
चल रही थी एक, अपसरा मेनका।
मानो, उन टिमटिमाती, तारों के मध्य,
बिखेर रही थी, आभा चन्द्रमा का।।

जैसे ही, वह झुण्ड पास आई,
वह मेनका, मुझे देख मुस्काई।
और वह, मानों उस झुण्ड से बाहर निकली,
अरे यह तो मेरी, प्यारी-सी बहन निकली।।

हाँ, वह तो, मेरी प्यारी-सी बहन थी,
प्यारा-सा नाम, है उसका जूली।।

यदि, वह मेरी बहन, ना होती,
तो मेरे हृदय मन्दिर में, क्या आता।
कनखियों से, देखते हुए, मैं उसकी,
अपूर्व सौन्दर्य राशि को,
अपने सम्पूर्ण अंगों से पी रहा होता।।

परन्तु, मेरी बहन पर, पड़ते ही मेरी दृष्टि,
मानो, उसने मुझे स्वप्नों से जगाया, झकझोरा,
दूसरी भी तो, होती है, किसी की बहन,
जैसे, मैं हूँ आपकी, प्यारी-सी बहन।।

हाँ, दूसरी भी तो, होती है, किसी की बहन,
जैसे, मैं हूँ आपकी, प्यारी-सी बहन।।
प्यारी सी बहन, हाँ, प्यारी-सी बहन,
आपकी बहुत ही, प्यारी-सी बहन।।

❑❑

thearyasamaj.org

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश— परमात्मा कैसा है? वह सबका जनक और पिता के समान सबका पालक है तथा सूर्य आदि का भी प्रकाशक है। उस कण-कण में व्यापक प्रभु के हम सरल व सच्चे मन से उपासक बनें।।

दध्यङ् आथर्वणः। देवता ईश्वरः (स्पष्टम्) निचृद्ब्राह्ममनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।।

पुनस्तमेव विषयमाह।।

ईश्वर-उपासना का फिर उपदेश करते हैं।।

ओ३म्– गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम्।
सं देवो देवेन सवित्रा गत सꣳ सूर्य्येण रोचते।। (यजु० ३७। १८)

पदार्थः — **(गर्भः)** गर्भ इवान्तः स्थितः **(देवानाम्)** विदुषां पृथिव्यादीनां वा **(पिता)** जनक इव **(मतीनाम्)**. मननशीलानां मेधाविनां मनुष्याणाम् **(पतिः)** पालकः **(प्रजानाम्)** उत्पन्नानां पदार्थानाम् **(सम्)** एकी भावे **(देवः)** स्वप्रकाशस्वरूपः **(देवेन)** विदुषा **(सवित्रा)** प्रसव-हेतुनाः **(गत)** प्राप्नुत। अत्र लोटि शपोलुक्। **(सम्)** **(सूर्य्येण)** प्रकाशकेन सह **(रोचते)** प्रकाशते।।

सपदार्थान्वयः — हे मनुष्याः! यो **(देवानाम्)** विदुषां पृथिव्यादीनां वा **(गर्भः)** गर्भ इवान्तः स्थितः **(मतीनाम्)** मननशीलानां मेधाविनां मनुष्याणां **(पिता)** जनक इव **(प्रजानाम्)** उत्पन्नानां पदार्थानां **(पतिः)** पालकः **(देवः)** परमात्मा स्वप्रकाशस्वरूपः **(सवित्रा)** प्रसवहेतुना **(देवेन)** विदुषा **(सूर्य्येण)** प्रकाशकेन सह **(सम् + रोचते)** एकीभावेन प्रकाशते, तं यूयं **(सङ्गत)** एकीभावेन प्राप्नुत।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो **(देवानाम्)** विद्वानों वा पृथिवी आदि के **(गर्भः)** गर्भ के तुल्य अन्दर स्थित **(मती-नाम्)** मननशील मेधावी मनुष्यों का **(पिता)** पिता के तुल्य रक्षकः **(प्रजानाम्)** उत्पन्न पदार्थों का **(पतिः)** पालक **(देवः)** स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा है, वह **(सवित्रा)** प्रसव के हेतु **(देवेन)** विद्वान् तथा **(सूर्येण)** प्रकाशक सूर्य के साथ **(सम् + रोचते)** एक होकर प्रकाशित हो रहा है, उसे तुम **(ससं + गत)** एक होकर प्राप्त करो।।

भावार्थः — हे मनुष्याः ! य सर्वेषां जनकः पितृवत् पालकः सूर्यादीनामपि प्रकाशकः सर्वत्राऽभिव्याप्तो जगदीश्वरोऽस्ति, तमेव पूर्णं परमात्मानं सदैवोपासताम्।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो सबका जनक पिता के तुल्य पालक, सूर्य आदि का भी प्रकाशक, सर्वत्र व्यापक जगदीश्वर हैं, उसी पूर्ण परमात्मा की सदैव उपासना किया करो।।

(''दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर'' से उद्धृत, व्याख्याता–स्व० श्री आचार्य सुदर्शनदेव)

विद्ययाऽमृतमश्नुते

विद्या से अमृत की प्राप्ति होती है।

thearyasamaj.org

सम्पादकीय

धर्म परिवर्तन की विडम्बना

(ओम प्रकाश शास्त्री, मो : 09416988351)

पिछले महीने की आठ तारीख को आगरा में हुए तथाकथित धर्मपरिवर्तन की घटना को लेकर छदम धर्म निरपेक्षवादी दलों से लेकर मीडिया तक में बवाल मचा हुआ है। उस (तथाकथित धर्मान्तरण) के तथाकथित सूत्रधार को इनामी भगोड़ा घोषित कर दिया और कुछ दिन बाद उसे गिरफ्तार भी कर लिया। किसी ने किसी का धर्मान्तरण अर्थात् धर्मपरिवर्तन करवा दिया। उसने उसको उस धर्म से हटाकर उस धर्म में दीक्षित करवा दिया अथवा उसने उस धर्म को त्यागकर उस धर्म को अपना लिया; इस धर्म से वो धर्म और उस धर्म से यह धर्म अच्छा है अथवा इस धर्म से वो धर्म या उस धर्म से यह धर्म बुरा है, इस धर्म से वो धर्म छोटा है या उस धर्म से यह धर्म छोटा है, इस धर्म से वो धर्म या उस धर्म से यह धर्म पुराना है अथवा इस धर्म से उस धर्म में यह नया है इस प्रकार की चर्चा-परिचर्चा और वाद विवाद सुनने को मिलते रहते हैं। प्रश्न है कि धर्म क्या है? इसका सीधा सा उत्तर है कि जिन सिद्धान्तों, जिन नियमों, जिन व्यवहारों और जिन आचरणों को अपनाने से लौकिक और पारलौकिक सुखों (अभ्युदय और निश्रेयस) की प्राप्ति होती हो, उसे धर्म कहते हैं। पुनः प्रश्न उठता है कि वे कौन से सिद्धान्त, व्यवहार, नियम व आचरण हैं जिनकों अपनाने से जीवन में लौकिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति होती है? तो वे सिद्धान्त है मानवता के सिद्धान्त, वो सिद्धान्त हैं दयालुता के सिद्धान्त, वो सिद्धान्त हैं विंश्वबन्धुत्व के सिद्धान्त; वो सिद्धान्त हैं सेवा के सिद्धान्त, वो सिद्धान्त हैं सज्जनता और सभ्यता के सिद्धान्त तथा वो सिद्धान्त हैं सात्विकता और समानता के सिद्धान्त। वो सिद्धान्त हैं विद्या, गम्भीरता, धीरता, शिष्टता और सहनशीलता के सिद्धान्त; वो सिद्धान्त हैं आस्तिकता के सिद्धान्त। मानवता, दयालुता, विश्वबन्धुत्व, सेवा, सत्यता न्याय, सहयोग, सामञ्जस्य, सज्जनता, सभ्यता, सात्विकता, समानता, विद्या, गम्भीरता, धीरता, शिष्टता, सहनशक्ति, और आस्तिकता ये धर्म के स्तम्भ हैं जिन पर धर्म का विशाल, विराट भवन खड़ा है। उपरोक्त सिद्धान्तों को, नियमों और व्यवहारों को जो व्यक्ति, जो समाज, जो राष्ट्र अथवा जो जाति अपनाती है, वही व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व जाति धार्मिक कहलाती है। यदि कोई किसी को मानवता के पथ से, यदि कोई किसी को दयालुता के सिद्धान्त से, यदि कोई किसी को सेवा के मार्ग से, यदि कोई किसी को सत्यता के व्यवहार से, यदि कोई किसी को न्याय के व्यवहार से, यदि कोई किसी को सहयोग के रास्ते से, यदि कोई किसी सामञ्जस्य ओर सज्जनता से, यदि कोई किसी को, सहनशीलता के आचरण से, यदि कोई किसी को सभ्यता और सात्विकता से, यदि कोई किसी को समानता से हटाकर दानवता के, निर्दयता व क्रूरता के, असहयोग के, भेदभाव के, असहयोग के, दुर्जनता के, असहनशीलता के, असभ्यता के, तामेवृत्ति के, और असमानता के रास्ते पर चलाता है, तो फिर मैं कह सकता हूँ कि वो धर्म-परिवर्तन है। यदि कोई विद्या (ज्ञान) के मार्ग से हटाकर किसी को अविद्या (अज्ञानता) के रास्ते पर लाता है तो मैं कह सकता हूँ कि वो धर्मान्तरण है। यदि कोई किसी को अहिंसा के रास्ते से हटाकर हिंसा के मार्ग में प्रवृत्त करता है, तो मैं कह सकता हूँ कि वो धर्म परिवर्तन है। यदि कोई किसी को धीरता से हटाकर अधीरता के रास्ते पर ले जाता है, तो मैं कह सकता हूँ कि वो धर्म-परिवर्तन है। यदि कोई किसी को शिष्टता से हटाकर अशिष्टता मे प्रवृत्त करता है तो उसे मैं धर्म परिवर्तन कह सकता हूँ। यदि कोई किसी को आस्तिकता से नास्तिकता की ओर ले जाता है, तो मैं उसे धर्म परिवर्तन कह सकता हूँ। मनु महाराज ने मनुस्मृति में जो धर्म के दस लक्षण धृति, क्षमा, दम अस्तेय, शौच (पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध आदि दिये

thearyasamaj.org

हैं इनसे हटाकर इनके विपरीत यदि कोई किसी को ले जाता है, तो मैं धर्म-परिवर्तन कह सकता हूँ आगरा में जो परिवर्तन हुआ, वह धर्म परिवर्तन नहीं अपितु एक मजहबी जाति परिवर्तन था। फिर भी इस प्रकरण में कुछ राजनीतिक दलों का दोहरा चरित्र उजागर हुआ है। दोहरी मानसिकता के चरित्र वाले राजनीतिक दलों को ईसाई मिशनरियों का भारत में लम्बे समय से ईसाइयत को बढ़ाने का चलाया जा रहा अभियान नहीं दिखाई देता। उनके अभियान के विरुद्ध धर्मनिरपेक्षता के ठेकेदारों ने कभी संसद में बहस नहीं की। भारी संख्या में मुसलमानों ने तलवार के बल पर इस बेचारी निरीह हिन्दू जाति को समूल नष्ट करने के प्रयास किये तथा बड़ी संख्या में हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया और आज भी ईसाई मिशनरियाँ तथा इस्लामी संगठन भारत में बड़ी संख्या में हिन्दुओं को ईसाई मुसलमान बनाने में लगे हुए हैं लेकिन किसी राजनीतिक दल ने इनके इन अभियानों के विरुद्ध एक बार भी आवाज नहीं उठायी। कई बार तो इन राजनीतिक दलों के व्यवहार से ऐसा लगता है मानो पूरी की पूरी राजव्यवस्था ईसाई और मुसलमानों की ढाल बनी हुई है तथा तथाकथित धर्मनिरपेक्षता का नकाब ओढ़कर हिन्दुओं की पीठ में छुरा घोंपने का काम कर रही है। राजनीतिक दलों में आगरा में तथाकथित धर्मपरिवर्तन से इतना हड़कमप मच गया मानो इस देश में इस तरह का यह पहला मामला हो; मानो तथाकथित धर्मपरिवर्तन के हिन्दू या हिन्दू संगठन ही दोषी हों। आगरा में ही कुछ परिवार ईसाई बन गये इस पर किसी राजनीतिक दल की प्रतिक्रिया नहीं आयी। न इस मुद्दे पर लोकसभा या राज्यसभा में बहस हुई, न ही मीडिया में इसकी कोई चर्चा हुई; न ही इस विषय पर कोई बहस हुई। न ही ईसाई बनाने वाले के खिलाफ कोई मामला दर्ज हुआ, यहाँ तक कि इस प्रकरण का सूत्रधार कौन है यह भी किसी दल अथवा संचार माध्यम ने जानने तक कोशिश नहीं की। इसलिए मैं कहता हूँ कि हमारे देश में तथा हमारी शासन प्रणाली में राजनीतिक के द्वारा प्रयोग किये जाने वाले धर्मनिरपेक्षता या साम्प्रदायिक सद्भाव जैसे शब्द सुविधाजनक राजनीति करने के लिए राजनीतिक दलों के हथियार हैं, जिन्हें अवसर के अनुसार प्रयोग कर लिया जाता है। धर्म निरपेक्षता, साम्प्रदायिक सद्भाव जैसे शब्द हमारे लिए बेमानी हैं; बेमानी मैं इसलिए कह रहा हूँ कि जो मानवतावादी है, जो विश्वबन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत है, जिसके अन्दर उदारता और दयालुता है, जो परोपकारी है, जो सहनशील है, जो संवेदनशील है; जो आस्तिक है और जो स्नेही और संयमी है, उसे भला उपरोक्त धर्मनिरपेक्ष, साम्प्रदायिक सद्भाव जैसे शब्दों की क्या आवश्यकता है? जिसका धर्म मानवता है, जिसका धर्म दया हे, जिसका धर्म सत्य है, जिसका धर्म अहिंसा है; जिस का धर्म शुचिता (पवित्रता) है; जिसका धर्म विश्वबन्धुत्व है, जिसका धर्म न्याय है और जिसका धर्म क्षमा है क्या उनका कभी धर्मपरिवर्तन हो सकता है? मेरे विचार से कदापि नहीं। यदि आगरा में हुए तथाकथित धर्म परिवर्तन को धर्मान्तरण माना जाता है तो ऐसे धर्मपरिवर्तन ईसाई व मुस्लिम संगठन करोड़ों लोगों का धर्मान्तरण करा चुके हैं और आज भी करा रहे हैं। लेकिन उपरोक्त संगठन मनु के अथवा ऋषियों मुनियों के द्वारा दी धर्म की परिभाषा के अनुसार लोगों को धार्मिक नहीं बना रहे हैं अपितु तथाकथित धर्म का नकाब ओढ़कर ईसाई बना रहे हैं या मुसलमान बना रहे हैं। आगरा की घटना को बेवजह तूल देकर भारतीय सभ्यता, भारतीय संस्कृति, भारतीय आध्यात्मिक वरिासत को बदनाम करने का विदेशियों का षड्यन्त्र है। धर्म हमारी जीवन पद्धति है, धर्म हमारी मुक्ति का साधन है, धर्म इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त करने का सशक्त साधन है; धर्म सफलतम जीवन जीने का, उसे (जीवन) जानने का सफ़लतम सूत्र है, यदि ऐसा नहीं होता तो चाणक्य को चाणक्य नीति में क्यों लिखना पड़ा कि "धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः" अर्थात् धर्म से हीन प्राणी पशु-समान है। यदि धर्म के गूढ़ तत्त्व समझ लेते तो तथाकथित धर्मनिरपेक्षवादी आगरा की घटना को इतना तूल नहीं देते।

❑❑

thearyasamaj.org

डॉ० निरुपण जी का सिद्धान्त-विरुद्ध निरुपण

(भावेश मेरजा, नर्मदा नगर भरुच, गुजरात)

'परोपकारी' के दिसम्बर (द्वितीय) 2014 के अंक में डॉ० निरुपण जी विद्यालंकार का लेख 'महर्षि दयानन्द और सृष्टिसंवत्' प्रकाशित हुआ है। इस लेख के अन्तिम भाग में लेखक ने अपने लेख के मूल विषय से हटकर जीव और ब्रह्म के स्वरूप के बारे में चर्चा की है। इस चर्चा में लेखक ने वैदिक सिद्धान्त विरुद्ध बात लिखी हैं।

उन्होंने 'अध्यात्म रामायण' नामक अनार्ष ग्रन्थ का उद्धरण देकर लिखा है-

"जीव ब्रह्म सूक्ष्म होने से स्थूल नेत्रों से दृष्टिगोचर नहीं होते, प्रत्युत योगाभ्यास द्वारा वे दिखाई देते हैं अतः जीव, ब्रह्मादि निराकार वस्तुओं को सर्वथा अरूप कहना नितान्त असंगत है। योगियों को योगबल द्वारा जीवात्मा तथा परमात्मा का जो समाधिजन्य प्रत्यक्ष होता है, वह सूक्ष्मतम रूप वाली होनी चाहिए।"

डॉ० निरुपण जी का उक्त मत वेद-विरुद्ध है। क्योंकि वेदादि शास्त्रों में सर्वत्र इन दोनों चेतन, निराकार तत्त्वों को अरूप, अदृश्य ही प्रतिपादित किया गया है। रूप (या दृश्यमान होना) केवल प्रकृति का गुण है, जीव और ब्रह्म का नहीं। सूक्ष्म मूल-प्रकृति सृष्टि का उपादान कारण है। उसमें से निर्मित सभी कार्य पदार्थों में रूप गुण विद्यमान रहता है- चाहे सूक्ष्म रूप हो या स्थूल रूप हो। परन्तु जीव और ब्रह्म मूल-प्रकृति के कार्य पदार्थ नहीं हैं। ये दोनों अनादि, अनुत्पन्न, चेतन पदार्थ हैं। ये दोनों सर्वथा अप्राकृतिक, अभौतिक सत्ताए हैं। उन दोनों में रूप गुण का सर्वथा अभाव ही होता है। अतः कोई भी व्यक्ति, चाहे वह सामान्य हो या विशेष योग्यता प्राप्त महान योगी- इन दोनों पदार्थों को कभी भी नहीं देख सकता।

समाधि तभी प्राप्त हो सकती है, जब व्यक्ति को इन तीनों अनादि सत्ताओं का स्वरूप विषयक वास्तविक ज्ञान हो। समाधि अवस्था में साधक को जब आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार होता है, तब भी ये दोनों पदार्थ- जीव और ब्रह्म सर्वथा अरूप ही होते हैं और समाधि अवस्था में भी योगी को इसी सत्य का साक्षात्कार - दर्शन (Realization) होता है कि जीव और ब्रह्म वास्तव में अरुप हैं। समाधि ज्ञान की सर्वोत्तम अवस्था होती है, उसमें मिथ्या ज्ञान या भ्रान्ति के लिए कोई भी अवकाश नहीं होता।

समाधि अवस्था में आत्म-दर्शन या ईश्वर-साक्षात्कार का अर्थ किसी रूप को देखना नहीं है। साधक इन पदार्थों के जिन यथार्थ गुण-कर्मस्वभाव को निश्चयात्मक मानकर अभी तक साधना कर रहा था, उसी अनुमान तथा शब्द प्रमाण आधारित ज्ञान की वह समाधि अवस्था में सीधी अनुभूति या प्रत्यक्ष करता है; और ईश्वर का सानिध्य पाकर उसे अलौकिक आनन्द आदि गुणों की प्राप्ति होती है।

रूप का ग्रहण या अनुभव केवल चक्षु इन्द्रिय के माध्यम से ही होता है। समाधि में पहुचने से पूर्व प्रत्याहार द्वारा अपनी सर्व ज्ञानेन्द्रियों को रूप आदि सर्व विषयों से पृथक् करने की आवश्यकता होती है। समाधि में चक्षु का प्रयोग होता ही नहीं है। इसलिए अगर समाधि में किसी को रूप का अनुभव होता है, तो यही समझना चाहिए कि उसे किसी रूप युक्त प्राकृतिक- जड़ पदार्थ की अनुभूति हो रही है, ईश्वर या स्व-आत्मा की नहीं।

आत्मा और परमात्मा सर्वथा रूप रहित हैं। अतः उनमें किसी भी प्रकार के रूप की कल्पना करना मिथ्या ज्ञान है। मिथ्या ज्ञान समाधि में बाधक है। अतः जीव, ब्रह्मादि निराकार वस्तुओं को सर्वथा अरूप कहना ही सत्य है।

❑❑

thearyasamaj.org

एक और पाखण्ड

(धर्मपाल आर्य)

अभी-अभी तथाकथित सन्त रामपालदास की गिरफ्तारी का मामला पूरी तरह से शान्त नहीं हुआ कि एक अन्य आध्यात्मिक गुरु आशुतोष महाराज का मामला तूल पकड़ता जा रहा है। रामपाल दास का और आशुतोष महाराज का प्रसंग यद्यपि भिन्नता लिए हुए है लेकिन दोनों प्रकरणों में अभिन्नता यह है कि जैसे रामपाल ने कोर्ट के आदेशों की खुल्लम खुल्ला अवहेलना की और उसके अनुयायियों ने जिस प्रकार कई दिनों तक हरियाणा सरकार को नाकों चने चबा दिये थे, ठीक उसी प्रकार के हालात पैदा करके आशुतोष महाराज के अनुयायी पञ्जाब सरकार के सामने कड़ी चुनौती खड़ी करने वाले हैं। रामपाल के अनुयायी तो रामपाल को कोर्ट की अवमानना के अपराध में गिरफ्तार होने से बचाने की मुहिम सरकार के खिलाफ छेड़े हुए थे लेकिन आशुतोष महाराज के अनुयायी उनके मृत शरीर का अन्तिम संस्कार करने के कोर्ट के आदेश को क्रियान्वित करने के पञ्जाब सरकार के फैसले के विरुद्ध आमने-सामने हैं। जिस प्रकार रामपाल को गिरफ्तारी से बचाने के लिए बरवाला के सतलोक आश्रम में उसके बाहर मौजूद पुलिस-फोर्स की संख्या से लगभग छह सात गुना उसके अनुयायियों की संख्या थी। अर्थात् बाहर पाँच-छह हजार पुलिस फोर्स के जवान थे, तो उस आश्रम में उसके अनुयायियों की संख्या लगभग 30 से 35 हजार के आस-पास थी। ठीक उसी प्रकार आशुतोष महाराज के अनुयायियों का दावा है कि "महाराज के दाह संस्कार के लिए यदि पञ्जाब सरकार बल प्रयोग करती है तो उसका सामना करने के लिए महाराज के लगभग 70 हजार अनुयायी संस्थान में इकट्ठे होंगे और कोर्ट के आदेश को क्रियान्वित करने की पञ्जाब सरकार की कोशिशों का डटकर सामना करेंगे। मैं इन दोनों प्रकरणों में मुख्य रूप से दो बुनियादी समानताएँ और दो ही बुनियादी असमानताएँ मानता हूँ। इन दोनों में पहली प्रमुख समानता है कि दोनों प्रदेशों (हरियाणा व पञ्जाब) की सरकारों को कोर्ट के आदेशों को क्रियान्वित करने का आदेश मिला हुआ था। दूसरी समानता यह है कि दोनों ही सरकारों को आदेश को क्रियान्वित करने में उनके अनुयायी आड़े आ रहे हैं। बल्कि कहना चाहिए कि एक (हरियाणा सरकार) के आड़े आ रहे थे और एक (पञ्जाब सरकार) के आड़े आने वाले हैं। जो इस प्रकरण में बुनियादी दो अन्तर हैं उनमें प्रथम प्रमुख अन्तर है विवादास्पद बयान और सिद्धान्त तथा सम्पत्ति तथा दूसरा प्रमुख अन्तर यह है कि एक प्रकरण का सूत्रधार (रामपाल दास) जीवित है जबकि दूसरे प्रकरण का सूत्रधार (आशुतोष महाराज) मर चुके हैं। और कोई अन्य पर्दे के पीछे से इस सारे प्रकरण का सञ्चालन कर रहा है। एक (रामपाल दास) के जीते-जी सैद्धान्तिक विवाद खड़े हो गये तो एक (आशुतोष महाराज) के मरने के बाद विवाद पैदा हुआ है और उस (विवाद) की जड़ में सैद्धान्तिक विवाद के साथ-साथ उन (आशुतोष महाराज) की चल-अचल सम्पत्ति भी है।

आशुतोष महाराज का बेटा दिलीप कुमार भी अपने पिता के पार्थिव शरीर को अपने गाँव में लाने की माँग सरकार और कोर्ट से कई बार कर चुका है। दिव्य ज्योति जागृति संस्थान उनके पुत्र की उपरोक्त माँग का विरोध कर रहा है साथ ही संस्थान का दावा है कि महाराज के कोई सन्तान ही नहीं है। एक आध्यात्मिक संस्थान में इतने सारे विरोधाभासों का होना कई सवालों को खड़ा करता है। सर्वप्रथम तो यही प्रश्न उठता है

thearyasamaj.org

कि महाराज आशुतोप ने करोड़ों रुपयों का संस्थान खड़ा किया तथा देश-विदेश में हजारों अनुयायी बनाये लेकिन अपने इस विशाल साम्राज्य का कोई योग्य उत्तराधिकारी क्यों नहीं बनाया। यह दिलीप कुमार झा जो दावा कर रहे हैं कि वो उनका पुत्र है लेकिन संस्थान उनके उपरोक्त दावे को खारिज कर रहा है तो प्रश्न उठता है कि इन दोनों में सच कौन बोल रहा है? क्या आध्यात्मिक केन्द्रों का इस तरह के विवादों में घिरना हमारी आध्यात्मिक पावन परम्परा को कलंकित नहीं करता? कभी आशाराम व उसके पुत्र नारायण साईं के धर्म और आध्यात्मिकता के नाम पर जनता को बहकाने व अवान्छित गतिविधियों में संलिप्त होने के मामलों का पर्दाफाश होना, कभी रामदास व उसके अनुयायियों का भक्ति के नाम पर समाज को गुमराह करने व सरकार से टकराने का मामला, कभी राम रहीम का विवादों में घिरना तथा आशुतोष महाराज के अनुयायियों का सरकार के व उनके पुत्र के साथ वैधानिक टकराव का होना आदि प्रकरण हमारी धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परम्परा पर कालिख पोतने का कार्य करते हैं। जिस सतलोक आश्रम में सत्य ज्ञान का उपदेश देने का ढोंग रचा जाता था, जिस आशाराम के सत्संगों में आध्यात्मिकता का उपदेश देने का दावा किया जाता था, जिन डेरों में त्याग का, शान्ति और सेवा का उपदेश देने का दिखावा किया जाता था, जिस संस्थान से महाराज के मानवता और भाईचारे के सन्देशों का ढिंढोरा पीटा जाता था उस सतलोक के सरगना का, उन सत्संगों के उपदेष्टाओं का, उन डेरानवीसों का तथा उन संस्थानों का विवादों में फंसना, शक के दायरे में आना अवश्य ही हम सबके लिए चिन्ता का विषय है। कोई भी व्यक्ति सत्संग में क्यों जाना चाहता है? इसीलिए न, कि उसे सत्संग में आत्मिक शान्ति मिले, अन्दर दुःखों से जूझने की शक्ति मिले, ईश्वर का सान्निध्य मिले, आत्मा (अपने) को जानने की योग्यता मिले, मानवता का परोपकार का पाठ पढ़ने को मिले और जीवन को नैतिक चारित्रिक शक्ति मिले परन्तु इसकी जगह जब अनुयायी संस्थानों व तथाकथित सन्तों की ढालों के रूप में प्रयोग किए जाएँ तो ऐसे आध्यात्मिक गुरुओं व संस्थानों पर सवाल खड़े होना स्वाभाविक है। आशुतोष महाराज का देहावसान हुए कई महीने बीत चुके हैं लेकिन उनके मृत शरीर का अभी तक अन्तिम संस्कार नहीं हुआ क्योंकि उनके अनुयायी तर्क दे रहे हैं कि महाराज का देहावसान नहीं हुआ है अपितु ये लम्बे समय के लिए समाधि में चले गये हैं। मैंने योगदर्शन का जहाँ तक अध्ययन किया है, उसके अनुसार मैं विश्वासपूर्वक दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि उसमें समाधि की ऐसी किसी प्रक्रिया का उल्लेख नहीं है जिसमें हजारों करोड़ों का कारोबार खड़े करने वाला आलीशान महल में निवास करने वाला और पूरी शान-शौकत से रहने वाला सांसारिक व्यक्ति भी चिर समाधि में जाकर उसके आनन्द का अनुभव कर सकता है। मुझे हैरानी होती है और दुःख भी कि दिव्य ज्योति जागृति संस्थान के लोग किस तरह बचकाने बयान देकर सत्य पर पर्दा डालने की असफल कोशिश कर रहे हैं। आज हमारा समाज ऐसी विडम्बनाओं का, ऐसे तथाकथित सन्तों और तथाकथित आध्यात्मिक गुरुओं के शिकञ्जे में बुरी तरह से जकड़ा हुआ है। महर्षि दयानन्द का अमर सन्देश है "सत्य के ग्रहण और असत्य को त्यागने में सदैव उद्यत रहना चाहिए और अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।" लेकिन ये तथाकथित सन्त और उनके संस्थान सत्य को, विद्या को जानने/ जनवाने के और मानने, मनवाने के केन्द्र नहीं अपितु असत्य के, अविद्या के ओर अय्याशी के अड्डे बनते जा रहे हैं । यदि ये तथाकथित सन्त और उनके संस्थान सत्यता और विद्या के प्रचारक और केन्द्र होते तो उन्हें व उनके अनुयायियों को शासन वा प्रशासन से टकराने की तथा बहाने बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मैं समझता हूँ कि आज समाज को अधिक

thearyasamaj.org

जागरूक, सचेत, सावधान, चिन्तनशील, विचारशील व मननशील होने की आवश्यकता है। चिन्तनशीलता के अभाव में, विवेकशीलता के अभाव में, जागरुकता और सजगता के अभाव में ही कुछ लोगों के (जो कि सन्त या आध्यात्मिक गुरु में वेश में है) शब्द जाल में फंसकर उनके आडम्बर में फँस कर असत्य भी सत्य, अधर्म भी धर्म, अवगुण भी गुण, अन्याय भी न्याय, बुराई भी अच्छाई, अविद्या भी विद्या, पाखण्ड भी वास्तविकता, दानवता भी मानवता, अज्ञानता भी ज्ञान, मूर्खता भी विवेक दिखाई देने लगता है। यही स्थिति हमारे समाज की सबसे बड़ी विडम्बना है और यही विडम्बना हमारे समाज का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। यही दुर्भाग्य हमारे समाज के भटकाव का कारण है और यही भटकाव समाज के दुःखों का कारण है। अन्त में मैं अपने प्रबुद्ध पाठकों को बता दूँ कि यदि पञ्जाब सरकार, दिव्य ज्योति जागृति संस्थान और महाराज के दावेदार पुत्र दिलीप कुमार झा इन तीनों के बीच यदि कोई बीच का समाधान का रास्ता निकलता है तो ठीक अन्यथा जो टकराव बरवाला के आश्रम में हुआ था, वही टकराव पञ्जाब सरकार और दिव्य ज्योति संस्थान के बीच हो जाये तो कोई आश्चर्य नहीं।

❑❑

जिनसे मुझको मिली प्रेरणा

(राजेशार्य आट्टा)

प्रिय पाठकवृन्द! पूज्यपाद आचार्य श्री राजवीर शास्त्री जी के सम्पर्क में मैं 'योगीश्वर कृष्ण' के माध्यम से आया। 1985 ई० में **आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट** द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक ने मुझे भगवान् श्रीकृष्ण के वासतविक स्वरूप से परिचित कराया व पुस्तक के सम्पादक आचार्य श्री राजवीर शास्त्री जी के प्रति श्रद्धा भाव जगाया। उसी श्रद्धा ने विद्यार्थी काल में ही मुझे -दयानन्द सन्देश' का आजीवन सदस्य बना दिया। 'दयानन्द सन्देश' में प्रकाशित आचार्य श्री के ज्ञानवर्धक लेख व शंका-समाधान पढ़कर वैदिक सिद्धान्तों को जानने-समझने का अवसर मिला। योग दर्शन व ईश केन कठ उपनिषदों का भाष्य आपकी विद्वत्ता को दर्शाता है तो व्यवहार में नम्रता 'विद्या ददाति विनयम्' को प्रकट करती थी व वर्षों अवैतनिक सम्पादक रहना आपके त्याग का गान गाता है।

लेखन क्षेत्र में मेरी प्राथमिक शिक्षा 'दयानन्द सन्देश' व 'मधुर लोक' के माध्यम से हुई। पूज्यपाद आचार्य श्री के स्नेहाशीर्वाद व कुशल निर्देशन को पाकर पौराणिक परिवार में पला-बढ़ा यह अबोध बालक ऋषि दयानन्द के महान कार्यों व वैदिक सिद्धान्तों से परिचित होकर "दयानन्द सन्देश" के माध्यम से ही ऋषि-ऋण चुकाने का कुछ प्रयास कर रहा है।

आर्यसमाज में एक गीत प्रायः सुना जाता है- जिनसे मुझको मिली प्रेरणा उनके दर्शन किये नहीं....। कुछ ऐसा ही मेरे साथ हुआ। लगभग 22 वर्ष उनके सम्पर्क में रहने के बाद भी मैं उनके प्रत्यक्ष दर्शन से वंचित रहा। अक्टूबर 2012 के सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन में इसी आशा से गया था कि आचार्य श्री का आशर्वाद ले सकूँ, पर आदरणीय श्री दिनेश शास्त्री से पता चला कि आचार्य जी का प्रवचन तो कल हो चुका। मैं पुनः उनके दर्शन से वंचित रह गया। 'हिन्दू इतिहास : वीरों की दास्तान' पुस्तक की सम्मति उनके आशीर्वाद के रूप में मुझे सदा स्मरण रहेगी और प्रेरणा देती रहेगी, ताकि उस सूर्य से प्रकाश पाकर मैं दीपक तो बन सकूँ।

तुम जीवित थे तो सुनने को जी करता था,
तुम चले गये तो गुनने को जी करता है।
तुम सिमटे थे तो सहमी-सहमी साँसें थीं,
तुम बिखर गये तो चुनने को जी करता है।

❑❑

thearyasamaj.org

बौद्ध दर्शन और ऋषि दयानन्द

(वेद मार्तण्ड डॉ. महावीर मीमांसक, मो : 09811960640)

ऋषि दयानन्द जहाँ वेदों के पारदृश्वा विद्वान् थे, वहाँ भारतीय दर्शनशास्त्रों- वैदिक और अवैदिक, दोनों प्रकार के दर्शनों के अद्भुत ज्ञाता थे। उन्होंने अपने कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में वेद विरुद्ध भारतीय मत-मतान्तर जिन में प्रमुख चार्वाक, बौद्ध और जैन मत थे- उनके दार्शनिक ग्रन्थों के आधार पर उन का खण्डन किया क्योंकि उनके मतों की प्रामाणिक जानकारी उन के दार्शनिक ग्रन्थों से ही मिल सकती थी।

इनमें एक मत बौद्धमत है, जो दार्शनिक रूप से अत्यन्त गम्भीर और वैदिक दार्शनिकों के साथ विशेष रूप से टक्कर लेता रहा है, क्योंकि वैदिक दार्शनिकों के साथ बौद्ध दार्शनिकों का विरोध प्रमुख रूप से (अन्य बातों के साथ) इसी बिन्दु पर रहा कि बौद्ध दार्शनिक क्षणिकवादी (अनित्यवादी) रहे हैं और वैदिक दार्शनिक सांसारिक अनित्यता (प्रकृति की विकृति से संसार की वस्तुओं अर्थात् संसार का बनते और बिगड़ते रहना) के अतिरिक्त ईश्वर आत्मा और ऐश्वर्यज्ञान-वेद को नित्य मानते हैं।

ऋषि दयानन्द ने बौद्धों का खण्डन उनके दर्शन के आधार पर 12वे समुल्लास (सत्यार्थ प्रकाश) में किया है। ऋषि दयानन्द ने बौद्ध दर्शन की प्रामाणिक जानकारी किस आधार पर किन स्रोतों से प्राप्त की इस तथ्य की स्पष्ट विज्ञप्ति ऋषि सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में देते हैं। वैसे तो ऋषि दयानन्द बौद्धों के आकर दार्शनिक विद्वानों यथा नागार्जुन, धर्मकीर्ति, दिङ्.नाग आदि के दार्शनिक ग्रन्थों के मर्मज्ञ थे किन्तु सर्वसाधारण की जानकारी के लिये वे लिखते हैं, "इनमें से बौद्धों के दीपवंशादि प्राचीन ग्रन्थों में बौद्धमत संग्रह" सर्वदर्शन संग्रह में दिखलाया है, उसमें से यहाँ दिखलाया है" (सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका)। इसके अभिप्राय हैं :-

1. बौद्धों के मौलिक प्राचीन दार्शनिक ग्रन्थ दीपवंशादि हैं, सर्वदर्शन संग्रह नहीं।

2. 'सर्वदर्शन संग्रह' एक संग्रह ग्रन्थ है, मौलिक दार्शनिक ग्रन्थ नहीं, जिस में बौद्धमत संग्रह दीपवंशादि बौद्धों के प्राचीन दार्शनिक ग्रन्थों से लिया गया है। इतना ही नहीं ऋषि दयानन्द यह भी भली भाँति जानते थे कि "सर्वदेर्शन संग्रह" ग्रन्थ सभी दर्शनों का केवल एक संग्रह ग्रन्थ ही है, मौलिक दर्शनग्रन्थ नहीं है। इसीलिये इस ग्रन्थ में जहां वैदिक दर्शन न्याय, वैशेषिक नहीं है। इसीलिये इस ग्रन्थ में जहां वैदिक दर्शन-न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा (वेदान्त) दर्शनों का सार संग्रह रूप से दिया हुआ है, वहाँ अवैदिक दर्शन-चार्वाक, बौद्ध ओर जैन दर्शनों के मतों को भी सार संग्रह रूप में दे रखा है, यह किसी एक दर्शन का भी सार संग्रह नहीं, अपितु सभी दर्शनों- वैदिक और अवैदिक दर्शनों का सार संग्रह ग्रन्थ है। इसी लिये ऋषि ने इस ग्रन्थ से न केवल बौद्ध दर्शन का सार सत्यार्थ प्रकाश 12वें समुल्लास में उद्धृत किया है, अपितु चार्वाक और जैन दर्शन का सार भी संग्रह रूप में इसी "सर्वदर्शन संग्रह" ग्रन्थ से उद्धृत किया है। ऋषि ने ऐसा इसलिए किया कि इस अवैदिक मतों के दार्शनिक तत्त्व को जनसाधारण के समक्ष ऐसे उपस्थित करना था जिससे सामान्य जन इनकी दार्शनिक शब्दावली के जाल में न उलझकर इसके सार को ग्रहण कर लें। ऋषियों की यही आर्ष बुद्धि होती है कि वे श्रोता या अध्येता को वाग्जाल और शब्दों के आडम्बर में न उलझाकर तत्त्व को सरल बना कर श्रोता के समक्ष सुविधा और सरलता से बुद्धिगम्य रूप में प्रस्तुत कर देते हैं।

इतना ही अपितु सत्यार्थ प्रकाश के 12वें समुल्लास में बौद्धमत के विषय में संक्षेप से लिखते हुए ऋषि बौद्धमत सम्बन्धी पहले ही श्लोक को सर्वदर्शन संग्रह

thearyasamaj.org

से उद्धृत बौद्ध दर्शन उद्धृत करते हैं और आगे भी बौद्ध दर्शन सम्बन्धी श्लोकों को बौद्धदर्शन उद्धृत दिखलाते हुए स्पष्ट मानते हैं कि ये श्लोक सर्वदर्शन संग्रह से उद्धृत हैं, इसीलिये उन श्लोकों में सं 4 में प्रयुक्त "द्वादशायत म बुधैः, श्लोक सं. 1 में प्रयुक्त "बुद्धानां सुगतो देवः" और श्लोक सं. 11 में प्रयुक्त "शिश्रिये वौद्धभिक्षुभिः" शब्दों से स्पष्ट है कि ये श्लोक मोलिक बौद्धदर्शन के नहीं है अपितु बौद्धों के दार्शनिक ग्रन्थों से सार संग्रह के रूप में लिये गये "सर्वदर्शन संग्रह" कार के अपने शब्द हैं जो ऋषि ने बौद्धदर्शन कह कर उद्धृत किये हैं। वस्तुतः यही ऋषि दयानन्द की शैली है कि वे बार बार "सर्वदर्शन संग्रह" न लिख कर बौद्धदर्शन लिखना पर्याप्त समझते हैं। ऋषि ने आगे भी बौद्धों के मत को प्रदर्शित करने के लिये 'विवेक विलास' ग्रन्थ में बौद्धों का मत दिखलाते हुए श्लोक दिये हैं जिनके अन्त में बौद्ध दर्शन न लिख कर श्लोक संख्या दी है जिससे यह स्पष्ट है कि ऋषि द्वारा उद्धृत ये श्लोक "विवेक विलास" ग्रन्थ में बौद्ध का मत प्रदर्शित करने वाले श्लोक हैं। यही स्थिति 'सर्वदर्शन संग्रह' से बौद्ध मत प्रदर्शित करने वाले श्लोकों की बौद्ध दर्शन लिखने से स्पष्ट है।

अब इन सब उद्धरणों से यह निर्विवाद स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द 'सर्व दर्शन संग्रह' ग्रन्थ को बौद्धों का मौलिक दार्शनिक ग्रन्थ नहीं मानते, अपितु अन्य दर्शनों के सार संग्रह की भाँति यही बौद्धों के दर्शन का भी सार-संग्रह करने वाला ग्रन्थ है। यही वास्तविक स्थिति भी है। ऋषि का दर्शन पूर्ण सत्य और निर्भ्रान्त है।

बौद्धमत के इसी प्रसङ्ग में ऋषि ने बौद्धों की चार शाखायें बौद्धदर्शन के आधार पर दिखलाते हुए लिखा है "यद्यपि इनका आचार्य बुद्ध उपदेश्टा जनाने वाला एक था तथापि सुनने वाले पुरुषों और शिष्यों के बुद्धिभेद से चार प्रकार की शाखायें हो गई। जैसे सूर्य के अस्त होने में जार पुरूष जारकर्म, चौर चौरी कर्म और पूर्ण विद्वान् सत्य आचरण करते हैं। समय एक और अपनी-अपनी बुद्धिभेद के अनुसार भिन्न-भिन्न चेष्टा करते हैं।"

यह निदर्शन ऋषि ने "सर्वदर्शन संग्रह" ग्रन्थ में बौद्धदर्शन के प्रसङ्ग में प्रदत्त प्रकरण से लिया है। वह प्रकरण इस प्रकार से है- "यथा गतोऽस्तमर्कः इत्युक्ते जार-चौर-अनूचान-आदयः स्वचेष्टानुसारेण अभिसरण-परस्व-हरण-सदाचरण-आदि समयं बुध्यन्ते"। इस का भाषान्तर ऋषि के शब्दों में ऊपर दिया जा चुका है। ऋषि ने इस उक्ति को मूल संस्कृत में न देकर जनसाधारण की जानकारी के लिए हिन्दी भाषा में ही दिया है।

सर्वदर्शन संग्रह पुस्तक के उपरि-लिखित उद्धरण पर तीन बिन्दु (प्रश्न) विचारणीय बनते हैं, जिनका स्पष्टीकरण पाठकों की जानकारी के लिये आवश्यक है :-

1. क्या "गतोऽस्तमर्कः" वाक्य बौद्ध दर्शन शास्त्र का है?

2. क्या इस निदर्शन में वर्णित जार, चौर और अनूचान के तीन कर्म अभिसरण परस्वहरण और सदाचरण (पूजा-सन्ध्या वन्दना आदि) इन ही तीन कर्मों के समय का अवबोध "सूर्य अस्त हो गया" कहने से होता है?

3. क्या यह सदाचरण शब्द पारिभाषिक है, जो इन्हीं कर्मों को अपनी परिभाषा (तकनीकी) में सीमित करके बाँधती है?

ऋषि दयानन्द का इन तीनों प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक है, जो पूर्णतः सत्य है, यह हम अनुपद ही सिद्ध करेंगे।

यह किसी भी दर्शन शास्त्र (बौद्ध दर्शन समेत) का वचन नहीं है। दर्शन शास्त्र में प्रत्येक शब्द का अर्थ निश्चित होता है, किन्तु यहाँ तो "गतोऽस्तमर्कः" का एक निश्चित अर्थ नहीं है, तीन अर्थ तो कम से कम यहीं दे रखे हैं, जिनका अवबोध इस एक वाक्य के बोलने पर अलग अलग व्यक्तियों को होता है। दर्शन शास्त्र में यह अर्थ का संकट पैदा नहीं होता, एक शब्द को चाहे कितने ही व्यक्ति सुनें सब को अर्थ का अवबोध

thearyasamaj.org

एक समान ही होता है। वह दर्शन शास्त्र ही क्या रहेगा जिस में शब्द और भाषा का अर्थ चूँ चूँ का मुरब्बा बन कर रह जाये। ऋषि दयानन्द दर्शनशास्त्र की भाषा की इस प्रकृति को बखूबी जानते और मानते हैं। इसीलिये ऋषि ने अर्थ की अनिश्चितता के लिये लिखा "आचार्य बुद्ध उपदेष्टा जनाने वाला एक था तथापि सुनने वाले पुरुषों और शिष्यों के बुद्धिभेद से" इत्यादि।

2. इस वाक्य से केवल तीन ही अर्थ, जो यहाँ दे रखे हैं, अवगत नहीं होते। इस वाक्य से इनके अतिरिक्त और भी कई अर्थों का अवबोध होता है, जैसे खेत में हल चलाने वाले कृषक को यह अवबोध होता है कि सूर्य अस्त हो गया, अब काम छोड़ कर घर जाने का समय है, एक श्रमिक को यह अवबोध होता है कि अब सूर्य अस्त हो गया है और अब काम बन्द करने का समय हो गया है इत्यादि इत्यादि। इसीलिये यहाँ दो बार "आदयः" और "आदि" शब्दों का प्रयोग हुआ है एक बार जार-चौर-अनूचार के बाद, जिन को सम्य का अवबोध होता है और दूसरी बार अभिसरण-परस्वहरण-सदाचरण के बाद जिन कामों के करने का अवबोध उन-उन व्यक्तियों को हुआ। कितने ही और और व्यक्तियों को जो भिन्न-भिन्न परिस्थितियों वाले हैं, उनको 'सूर्य अस्त हो गया' यह वाक्य कहने पर परिस्थिति, कार्य और बुद्धि भेद से कितने ही अनेक और और कार्य करने का अवबोध हो सकता है। अवबोध की कोई सीमा निर्धारित नहीं है कि इतने ही प्रकार का अवबोध होगा।

ऋषि दयानन्द इस तथ्य से भी भली भाँति परिचित थे कि यह दर्शन-शास्त्र की भाषा नहीं हो सकती और इस वाक्य से कितने ही अन्य कार्यों का अवबोध हो सकता है, केवल तीन ही प्रकार के अवबोध करवाने तक यह वाक्य सीमित नहीं है। इसीलिये ऋषि इस वाक्य को, जिसमें तीन प्रकार के अवबोध की बात कही है, एक आचार्य बुध उपदेष्टा की बात सुनने वाले पुरूषों और शिष्यों के बुद्धिभेद से चार शाखाओं में विभक्त होने के निदर्शन के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

ऋषि इस तथ्य को भली भाँति जानते हैं कि यह वाक्य किसी भी दर्शन शास्त्र का वाक्य नहीं है, अपितु ध्वनि काव्य का आदर्श वाक्य है। दर्शनशास्त्रों में प्रत्येक शब्द का अर्थ निश्चित होता है किन्तु काव्यशास्त्र में एक शब्द के अनेक अर्थ अभीष्ट माने जाते हैं, यही काव्यशास्त्र और साहित्य की श्रीवृद्धि है कि उसमें एक शब्द अनेक अर्थों को अभिव्यक्त करे। इसीलिये काव्यशास्त्री, साहित्यशास्त्री, भाषा शास्त्री और अर्थ विज्ञान के विद्वान् इस तथ्य को भली भाँति जानते हैं कि शब्द के अर्थ की शक्ति अभिधा के अतिरिक्त लक्षणा और व्यञ्जना की भी होती है। किन्तु ध्वनिकाव्य, शास्त्रियों ने एक ध्वनिशक्ति भी शब्द के अर्थ को मानी जो लक्षणा और व्यञ्जना शक्ति से यह भेद रखती है कि इन शक्तियों के द्वारा तो एक विशेष निश्चित शब्द अपने अभिहित अर्थ के अतिरिक्त एक और निश्चित अर्थ को लक्षित या व्यञ्जित करता है, किन्तु ध्वनि शक्ति के द्वारा एक सामान्य शब्द अनेक कितने ही अर्थों को ध्वनित कर सकता है। जैसे वर्तमान प्रसङ्ग में गतोऽस्तमर्कः (सूर्य अस्त हो गया) यह वाक्य करता है। इसी तथ्य को स्वीकार करके ध्वनि काव्यशास्त्र ध्वन्यालोक आदि की रचना हुई और इस सिद्धान्त को सभी संस्कृत साहित्य शास्त्रियों को स्वीकार करना पड़ा, और "गतोऽस्तमर्कः" यह वाक्य सभी संस्कृत साहित्य शास्त्रियों ने ध्वनिकाव्य का आदर्श वाक्य मानकर अपने अपने शास्त्रों में ध्वनि को शब्दार्थ शक्ति के साथ में उद्धृत किया। ऋषि दयानन्द इन तथ्यों को भली भाँति जानते थे।

3. ऋषि दयानन्द इस उद्धरण को पारिभाषिक (तकनीकी) नहीं मानते कि इसमें इतने ही उदाहरण आयेंगे जितने कि यहाँ गिनाये गये हैं। इसीलिये ऋषि इस उद्धरण में प्रयुक्त "सदाचरण" शब्द की व्याख्या शब्द बदलकर "सत्याचरण" शब्द द्वारा करते हैं परिभाषा के शब्द तकनीकी होते हैं, जो बदले नहीं जा सकते। ऋषि जानते थे कि यह परिभाषा नहीं है अतः एव सदाचरण शब्द के स्थान पर सत्याचरण शब्द बदल

thearyasamaj.org

दिया। वस्तुतः यह परिभाषा नहीं ऋषि ने इसकी परिभाषा नहीं दी। इसमें और कितने ही उदाहरण शामिल किये जा सकते हैं, जैसे यदि कोई अनूचान सायंकाल यज्ञ करता है, तो उसे यज्ञ करने के समय का अवबोध होगा, सन्ध्या करने वाले को सन्ध्या करने के समय का, वेद पाठ करने वाले को वेदपाठ करने के समय का, देवालय (मन्दिर) जाने वाले को मन्दिर जाने के समय का, पूजा पाठ वन्दना, आरती आदि के समय का अवबोध होगा। भिन्न-भिन्न सत्पुरूषों को अपनी-अपनी धार्मिक क्रियाओं, अनुष्ठानों के करने के समय का अवबोध होगा।

और वह अवबोध होगा प्रसङ्ग से। यह प्रसङ्ग है सूर्य के अस्त होने का, जो सायंकाल का अवबोधक है। अतः जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि "सूर्य अस्त हो गया" और सुनने वाला व्यक्ति यदि धार्मिक, आस्तिक (अनूचान) है तो उसे इस वाक्य के सुनने पर अपने सायंकालीन करने योग्य धार्मिक अनुष्ठानों, सदाचरणों, सत्याचरणों, श्रेष्ठ आचरणों के अनुष्ठान करने के समय का अवबोध (ध्वनित) होगा। यह प्रक्रिया है, जो ध्वनित अर्थ के अवबोध द्वारा "गतोऽस्तमर्कः" इस वाक्य के सुनने पर भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति वाले लोगों को भिन्न-भिन्न क्रियाओं के करने के समय का अवबोध करवाती है, जो क्रियाएँ (कर्म) उन उन लोगों को सूर्य के अस्त होने पर करने होते हैं। अतः यहा "सदाचरण" जिस का शाब्दिक अर्थ ऋषि ने 'सत्य आचरण' किया जो श्रेष्ठ आचरण का वाचक है, वे सत्य आचरण विद्वान् (धार्मिक) विशेष पुरुषों के लिये केवल उन सायंकालीन सूर्य अस्त होने पर करने योग्य विशेष अनुष्ठानों तक सीमित होकर रह जाते हैं जो केवल सूर्य अस्त हो जाने पर करने चाहिये और अन्य सामान्य सदाचरण-सत्य आचरणों का परिहार इस समय सीमा (सूर्य के अस्त होने का समय) से नहीं होता है, जो सभी समयों में करने चाहिये। अतः सदाचरण शब्द कोई पारिभाषिक नहीं है अपितु अपने सामान्य शाब्दिक अर्थ द्वारा ही सूर्य के अस्त होने के ध्वनित अर्थ के प्रसङ्ग में सीमित होने से कुछ विशेष अर्थ (करने योग्य कर्मों) का अवबोध करवाता है। यह अर्थ अवबोध की प्रक्रिया महर्षि जैमिनि ने अपने पूर्व मीमांसा दर्शन में 'एकवाक्यता' द्वारा वर्णित की है। जैमिनि का सूत्र है, "अर्थैकत्वाद एकं वाक्यं साकाङ्.क्षां चेद् विभागे स्यात् (पू.मी. 2.1.46)। अर्थात् यदि शब्दों की दूरी होने पर भी वे एक अर्थ को प्रकट करते हैं तो वह एक ही वाक्य मानना चाहिये, यदि उन शब्दों को अलग-अलग रखने पर अर्थ की आकाङ्.क्षा बनी रहे तो यह अर्थावबोध की प्रक्रिया पू.मी. द्वारा प्रदर्शित वैदिक भाषा पर भी लागू होती है और लौकिक भाषा पर भी। अब इन शब्दों की एकवाक्यता ऐसे बनती है, "गतोऽस्तमर्कः अनूचानः सदाचरणमव बुध्यते", अर्थात् 'सूर्य अस्त हो गया, (यह कहने पर) अनूचान को सदाचरण (के समय) का अवबोध होता है। यही अर्थावबोध की प्रक्रिया आधुनिक भाषा विज्ञान में अर्थ विज्ञान में भी समझायी जाती है। यहा "अवबुध्यन्ते" शब्द विशेष व्याख्या की अपेक्षा रखता है।

निष्कर्ष यह है कि "गतोऽस्तमर्कः" ऐसा कहने पर अनूचान को उन सदाचरण, सत्य-आचरण, श्रेष्ठ कर्मों का अवबोध होता है, जो सूर्य अस्त होने पर उसे करने चाहिये और जो सत्य आचरण हैं यज्ञ, सन्ध्या, ध्यान, वन्दना, पूजापाठ आदि विशेष कर्म; जो सायंकाल सूर्य अस्त होने पर करने होते हैं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि "गतोऽस्तमर्कः" ऐसा कहने पर अनूचान को उन सदाचरण, सत्यआचरण, श्रेष्ठ कर्मों के न करने (निषेध) का अवबोध होता है जो सत्य आचरणों, श्रेष्ठ आचरणों में गिने जान वाले सत्यभाषण, सदाचार, अस्तेय आदि सामान्य कर्म सार्वकालिक (सभी समयों में) पालन करने योग्य हैं। वे तो "सत्यं वद" आदि यथा विधान प्राप्त हैं ही।

ऋषि दयानन्द संस्कृत साहित्य शास्त्र और काव्यशास्त्र के भी मर्मज्ञ विद्वान् थे। उन्होंने अपने सभी मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि का प्रारम्भ स्व रचित काव्यमय पद्य रचनाओं से किया है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में "अलङ्कारभेद विषयः" एक

thearyasamaj.org

अलग स्वतन्त्र विषय दिया है। वेद मन्त्रों में अलङ्कार प्रदर्शित करने के लिये अपने वेदभाष्य में स्थान-स्थान पर अलङ्कारों का उल्लेख किया है।

वस्तुतः यह ध्वनिकाव्य का जाना माना उद्धरण है जिसे सभी संस्कृत साहित्यकारों ने शब्द की अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना इन तीन आर्थिक शक्तियों के अतिरिक्त ध्वनि शक्ति को भी स्वीकारा है और उसी के उदाहरण के तौर पर इसे उद्धृत किया है। 'ध्वन्यालोक' में इस की विशेष विस्तृत व्याख्या है। सर्वदर्शन-संग्रहकार ने संस्कृत साहित्यशास्त्रों से यह उद्धरण इस तथ्य को बतलाने के लिये उद्धृत किया है कि किस प्रकार से बुद्ध के एक ही उपदेश को भिन्न भिन्न प्रकार के उसके श्रोता और शिष्यों ने भिन्न भिन्न रूप में समझा और एक बुद्ध की चार शाखाए बौद्ध धर्म के रूप में बुद्ध के नाम पर चल पड़ीं। यह स्थिति महात्मा बुद्ध के निर्वाण के बहुत काल बीत जाने के बाद हुई। अतः यह उक्ति भी बुद्ध के सैंकड़ों वर्ष निर्वाण के बाद चार शाखाओं में बौद्ध धर्म विभक्त होने के बाद उद्धृत की जाने लगी, यह बौद्ध दर्शन की मूल उक्ति है ही नहीं। ऋषि ने यही बात अपने शब्दों में कही है, यद्यपि सारभूत आधार यही उक्ति है। स्पष्ट है यह उक्ति बोध दर्शन की नहीं है। इस से यह भी स्पष्ट है कि सदाचरण शब्द भी पारिभाषिक नहीं है, और भी कितने ही सायंकालीन (सूर्य अस्त होने पर) किये जाने योग्य धार्मिक अनुष्ठानों, कृत्यों को इस में शामिल किया जा सकता है। अर्थ का अवबोध एक वाक्यता के आधार पर ही होता है, जैसे हमने प्रदर्शित किया। इसीलिये ऋषि ने सत्य आचरण कह कर की। यदि वह शब्द पारिभाषिक होता, तो ऋषि इसकी परिभाषा देते, वह भी मूल बौधदर्शन से इसे बदलते नहीं, क्योंकि पारिभाषिक (तकनीकी) शब्द को बदला नहीं जा सकता। मौलिक बौधदर्शन में यह शब्द प्रयुक्त है ही नहीं। यह कहना कि पूजा पाठ आदि ही सत्य-आचरण हैं, शेष शुभ कर्म, श्रेष्ठ कर्म सत्य-आचरण नहीं हैं, कहा की बुद्धिमत्ता है?

यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय है कि क्या इससे अनूचान की सांयकालीन दिनचर्या निर्धारित हो गई, वह सदाचरण, सत्याचरण सायंकाल (सूर्य अस्त होने पर) ही करें शेष समय में सत्य आचरण अर्थात् श्रेष्ठ आचरण न करें, दिनभर असत्य आचरण ही करे, ऋषि पर यह आरोप (आक्षेप) नहीं बनता। सदाचरण जिसको ऋषि ने सत्य आचरण कहकर व्याख्यात किया इस सत्य आचरण शब्द के द्वारा वे सभी श्रेष्ठ कर्म समझे जाते हैं जो अनूचान सज्जन पुरुष जीवन भर सदा सभी समयों में करते हैं जैसे सच बोलना, सदाचार, ईमानदारी, अस्तेय आदि जो सार्वकालिक कर्म हैं, इन में धार्मिक अनुष्ठान पूजापाठ, ध्यान, सन्ध्या, यज्ञ, वन्दना आदि भी शमिल हैं किन्तु धार्मिक पूजा पाठ आदि कर्म करने का समय तो निश्चित है सायंकाल (प्रातः काल भी) शेष सभी सत्य आचरण श्रेष्ठ कर्म सार्वकालिक हैं सभी समयों में करने ही चाहिये। अब यदि कोई अनूचान दिन भर अपनी व्यस्तताओं में संलग्न होने के कारण सायंकाल (सूर्य अस्त होने पर) पूजा पाठ आदि निश्चित समय पर करने योग्य सदाचरण-सत्याचरणों का ध्यान रखने में भूल करता है और कोई दूसरा व्यक्ति यह कहता है कि सूर्य अस्त हो गया तो उसे उस समय विशेषता करने योग्य पूजा पाठ आदि कर्मों को करने का स्मरण (अवबोध) हो आता है। इसीलिये इस वाक्य में "इत्युक्ते" शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण हैं, कि किसी के कहने पर उस अनूचान को इन कर्मों के करने के समय का अवबोध हो जाता है और वह उस समय करणीय विशेष कर्म पूजा-पाठ आदि करता है। सामान्य सत्य आचरण श्रेष्ठ कर्मों को उस समय करना छोड़ दे या सामान्य श्रेष्ठ कर्म भी केवल उसी समय करे अन्य समयों में नहीं, यह अभिप्राय इस उक्ति से सर्वथा नहीं निकलता। अतः यहा दिनचर्या के निर्धारण का आरोप ऋषि पर लगाना शास्त्रों के ज्ञान से शून्यता का सूचक है।

ऋषि के प्रत्येक वाक्य और शब्द की गम्भीर प्रामाणिक शास्त्रीय विवेचना और प्रसङ्ग-पूर्वक व्याख्या करने की महती आवश्यकता है, अन्यथा बड़े-बड़े ऋषिभक्त विद्वान् भी लड़खड़ा सकते हैं।

❑❑

thearyasamaj.org

छान्दोग्य में 'तत्त्वमसि'

(उत्तरा नेरुर्कर, बंग्लौर, चलभाष : ०९८४५०५८३१०)

छान्दोग्य उपनिषद् का एक प्रसिद्ध वाक्य है जो कि अद्वैतवादियों का उद्घोष बन गया। वह है- "तत्त्वमसि"। इसका शंकराचार्य ने अर्थ किया, "तू ही वह ब्रह्म है।" और वहाँ से अद्वैतवाद की धारा निकल पड़ी। इस प्रसंग में पिता उद्दालक आरुणि अपने बेटे श्वेतकेतु को उपदेश दे रहे हैं। पुत्र के पूछने पर वे इस वाक्य को अनेकों उपमाओं से समझाते हैं। इनमें से कुछ उपमाएँ भी जैसे अद्वैतवाद का मण्डन करती दिखाई पड़ती हैं। परन्तु अन्य उपमाएँ निरर्थक-सी लगती हैं। आर्य-समाजी विद्वानों ने दिखाया कि यहाँ वाक्य का अर्थ "ब्रह्म तत्व है" अर्थात् ब्रह्म सब वस्तुओं में ओत-प्रोत है। परन्तु इस अर्थ से भी अधिकतर उपमाएँ निरर्थक लगती हैं। इसलिए व्याख्याकार उपमाओं को प्रसंग के अनुरूप समझाए बिना ही आगे बढ़ जाते हैं। मेरे अनुसार ये दोनों ही अर्थ त्रुटिपूर्ण हैं, और जो अर्थ मैं नीचे दे रही हूँ, उससे उपमाओं के कितने सुन्दर अर्थ बनते हैं, यह उस अर्थ में प्रमाण हैं।

तत्त्वमसि का प्रकरण 6/8/6 से प्रारम्भ होकर छठे प्रपाठक के अन्त तक (6/16/3 तक) जाता है। 6/8/6 में उद्दालक पिछले प्रकरण का अन्त करते हुए कहते हैं कि शरीर छोड़ती हुई आत्मा की पहले वाणी मन में समा जाती है, फिर मन प्राण में विलीन हो जाता है, फिर प्राण तेज में मिल जाते हैं उसके बाद तेज उससे 'पर' - सूक्ष्म देवता को प्राप्त करते हैं- **"अस्य सोम्य ! पुरुषास्य प्रयतो वाङ्. मनसि सम्पद्यते। मनः प्राणे। प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम्। स य एषोऽणिमा।। छा० 6/8/6।।** यहाँ उस अणिमा-रूपी परा देवता को शंकराचार्य ने ब्रह्मार्थक लिया है। इस कारण (और आगे दिए हुए कारण) दोनों वेदान्तियों और आर्य-समाजियों ने भी इसे ब्रह्मार्थक लिया है। मेरा यहाँ मतभेद है। मेरे अनुसार सारी जीवात्माएँ मरणानन्तर ब्रह्म को प्राप्त नहीं होतीं, केवल मुक्त आत्माओं की ही यह गति होती है। सो यहाँ अणिमा आत्मा जीवात्मा है, जिसको अन्त में तेज प्राप्त करता है। परन्तु इस व्याख्या से अगले वाक्य में ही कठिनाई उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण ही यहाँ ब्रह्म अर्थ लिया जाता रहा है।

यह वाक्य है- **"ऐतदात्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि, श्वेतकेतो! इति...।। छा० 6/8/7।।** - अर्थात् यह सब उस आत्मा से व्याप्त है- ऐतदात्म्य है। वह (आत्मा) सत्य है। वह आत्मा वह तुम हो, श्वेतकेतु! **इदं सर्वं** - 'यह सब' का अर्थ इन प्रकरणों में प्रायः 'यह संसार होता' है, और व्याख्याकारों ने यही लिया है। सो संसार को व्यापने वाला तो केवल एक परब्रह्म परमेश्वर ही है, फिर जीवात्मा अर्थ लेना दोषपूर्ण है। परन्तु परमात्मा अर्थ करने पर 'वह आत्मा तुम हो, श्वेतकेतु!' के अर्थ सही नहीं बैठते। अथवा 'वह परमात्मा तत्त्व है'- यह भी निरर्थक-सा वाक्य है। और 'तत्त्वमसि' के 'असि' में मध्यम पुरुष के एकवचन का प्रयोग, अर्थात् 'तुम हो' आड़े आता है। सो, पण्डित शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ जी ने 'असि' को 'अस्ति'-अर्थक् बताया, और यह पुरुष-व्यत्यय आर्ष बताया। इस अर्थ को लेने में, उन्होंने एक कारण और दिया है- 'स आत्मा तत्त्वमसि' में जो 'सः' है, वह पुल्लिंग है। और आत्मा शब्द संस्कृत में पुल्लिंग ही होता है सो नपुसंकलिंग 'तत्' का उस पूर्वपद आत्मा से सम्बन्ध नहीं हो सकता। वैसे तो, कहने के लिए, 'तत्' को भी आर्ष-प्रयोग माना जा सकता है, परन्तु इस वचन का इसी वाक्य में खण्डन है। ''तत् सत्यं स आत्मा'' में ही तत् आगे आने वाले 'सः' (आत्मा) को कह रहा है। तो मेरे अनुसार, उसी 'सत्यं' को 'तत्त्वमसि' का 'तत्' भी कह रहा है। इसको ठीक-ठीक समझने के लिए हम उपनिषद् थोड़ा आगे पढ़ते हैं।

अगले वाक्य (6/9/1-4) में उद्दालक कहते हैं-

thearyasamaj.org

"जिस प्रकार मधुमक्खियाँ अनेकों वृक्षों (के फूलों) से रस ग्रहण करके, उनको मधु में एक कर देती हैं, उन (रसों) को फिर यह विवेक नहीं रहता कि मैं उस वृक्ष का हूँ या उस दूसरे वृक्ष का, ऐसे ही ये सारी प्रजाएं सत् को प्राप्त होकर, यह नहीं जानतीं कि हम सत् को प्राप्त हो गए हैं। इस संसार में वे व्याघ्र, सिंह, भेड़िया, वराह, कीट, पतड्.ग, मच्छर या मक्खी जो-जो बनते हैं, (तद् आभवन्ति) वह ही होते हैं।" अब यदि शंकराचार्य के अर्थ लें तो अर्थ बनता है- वह ब्रह्म एक 'मधु' होता हुआ, सब जीव-जन्तुओं में, अनेक वृक्षों के रसों के समान, भिन्न-भिन्न गुणों से वर्त रहा है। आर्यसमाजी यहाँ कहती है- ये सारी प्रजाएँ (भिन्न रस) ब्रह्म (मध I) से युक्त होती हुई भी यह नहीं जान पा रहीं हैं कि वे ब्रह्म से युक्त हैं। वे पुनः पुनः उन सिंह आदि योनियों को प्राप्त करके जन्म-मरण के बन्धन में फंसे रहते हैं। परन्तु श्लोक में तो रसों ने अपना अस्त्त्वि गंवा दिया, और 'तद् आभवन्ति' के अर्थ 'पुनः पुनः जन्म होना' बहुत सही नहीं लगते! ब्रह्म से एकता आर्यसमाजियों को मान्य नहीं है, परन्तु उनके अर्थ वाक्यानुसार नहीं लगते, जबकि अद्वैतवादियों के अर्थ वाक्यार्थ से उल्टे लग रहे हैं!

अब हम एक दूसरा अर्थ दिखाते हैं- क्योंकि यहाँ विभिन्न प्रजाओं में सत् होना कहा गया है, जो कि एक है, हम उस 'सत्' का अर्थ 'मूल प्रकृति' करते हैं, जो पद सांख्य आदि शास्त्रों के अनुसार है। और 'अणिमा आत्मा' को 'जीवात्मा' समझते हैं। तब इस वाक्य के अर्थ बने- ये जो व्याघ्र आदि प्रजाएँ हैं, वे सब 'एतदात्म्य' हैं - जीवात्मा से व्याप्त हैं। वह जीवात्मा इस एक सत् जो संसार में बहुत्व को प्राप्त हो गया है, को प्राप्त होकर उस सत् में एकरस हो जाती हैं और फिर वे भूल सी जाती हैं कि वे सत् को प्राप्त हो गयी हैं, जबकि वे हैं कुछ और। 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं' में 'इदं सर्वं' के अर्थ हैं- 'ये सब प्राणी आत्मा (जीवात्मा) से व्याप्त हैं', न कि 'ये संसार आत्मा (परमात्मा) से व्याप्त है।'

अवश्य ही आप अभी सन्तुष्ट नहीं हुए होंगे! सो, आगे देखिए।

अगली उपमा (6/10/1-3) में उद्दालक कहते हैं कि समुद्र में जाकर नदियाँ इस प्रकार मिल जाती हैं कि वे नहीं कह सकती हैं कि मैं अमुक नदी हूँ या मैं अमुक नदी हूँ। इसी प्रकार सिंह आदि सारी प्रजाएँ सत् से आकर, यह नहीं बता पातीं कि हम सत् से आए हैं। यह उपमा भी पूर्ववत् है, सो यहाँ कुछ भी विशेष नहीं है।

फिर उद्दालक कहते हैं (6/11/1-3) "बड़े वृक्ष के मूल में काटो तो रस बहने लगता है, पर वह जीवित रहता है। इसी प्रकार मध्य में या ऊपर काटने पर भी वृक्ष जीता रहता है। सो वह वृक्ष जीती हुई आत्मा (अर्थात् जीवात्मा-ऐसा सभी व्याख्याकार मानते हैं) से व्याप्त होता हुआ, पृथ्वी से पानी पीता हुआ हर्षित हुआ खड़ा रहता है। जब यह जीव (वृक्ष) एक शाखा, दो शाखा, तीन शाखा या सारी शाखाओं को त्यागता है, तो वे शाखाएँ सूख जाती हैं। इसी से तू जान, हे सोम्य श्वेतकेतु! (**जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते, न जीवो म्रियते इति।। छा० 6/11/3।।**) जीव से अलग हो जाने से यह (शाखा अर्थात् शरीर) मर जाता है, परन्तु जीव नहीं मरता। वही यह अणिमा आत्मा है, जिससे व्याप्त यह सब है, जो सत्य है, जो आत्मा 'तत्त्वमसि'।"

अब यहाँ हम प्रकरण में जीवात्मा के ब्रह्म को प्राप्त करने का प्रकरण (आर्य-समाजी मान्यता से) मानें, तो शाखाओं के सूखने से 'तत्त्वम्-असि' का कोई सम्बन्ध नहीं बनता। अद्वैत-वादियों के मत का तो यहाँ खण्डन ही हो जाता है, क्योंकि उनके अनुसार तो 'न जीवो म्रियते' - जीव नहीं मरता, शाखा ही मरती है का कोई अर्थ ही नहीं है, क्योंकि ब्रह्म ही एक सत्य है- क्या मरा, क्या जीया! परतु यदि हम सत् को प्रकृति मानें और जीवात्मा को सत्य, तो उपमा पूरी तरह स्पष्ट है। बल्कि यह वाक्य **'जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते, न जीवो म्रियते इति'** मेरी व्याख्या का अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण है

thearyasamaj.org

कि यहाँ जीवात्मा और प्रकृति की बात हो रही, न कि ब्रह्म की! जीवात्मा और प्रकृति के भेद बता रहे उद्दालक कह रहे हैं कि **शरीर में जीवन आत्मा के कारण है।** सो, शरीर के अंग कटने पर भी अंगी आत्मा नहीं मरता, और - इसी उपमा को आगे बढ़ाते हुए-पूरे शरीर के मर जाने पर भी जीवात्मा बना रहता है। हे श्वेतकेतु! वह सूक्ष्म जीवात्मा ही तू है।

अगली उपमा (6/12/1-3) लीजिए। "वट-वक्ष के फल को काटने पर उसमें छोटे-छोटे बीज दिखते हैं। परन्तु उन बीजों को काटने पर कुछ भी अन्दर अलग नहीं दिखता। सो जो इस बीज में अणिमा पदार्थ तुझे नहीं दिख रहा, उसी से एक महान् वट वृक्ष खड़ा हो जाता है, यह तू श्रद्धा रख, श्वेतकेतु! वह अणिमा आत्मा सबमें व्याप्त है आदि आदि।" यहाँ तो ब्रह्म-प्राप्ति या ब्रह्म की अद्वैतता दिखाना और भी कठिन है। परन्तु दूसरे अर्थ सरल और सुन्दर हैं- जिस प्रकार बीज में वट वृक्ष नहीं दिख रहा, उसी प्रकार इस शरीर में भी जीवात्मा अदृश्य है। और जो आत्मा बीज में छुपी है, वही वट वृक्ष में छुपी है।

अगली उपमा (6/13/1-3)- "यदि नमक के ढेले को रात-भर जल में रखेंगे, तो सुबह ढेले का कहीं अता-पता नहीं होगा, परन्तु जल के ऊपर, मध्य या नीचे के भाग में, अर्थात् सर्वत्र लवण की रुचि होगी। सो, नमक जल में ही है, परन्तु कहीं भी नहीं दीख रहा है। वह यह अणिमा आत्मा भी सबमें विद्यमान है आदि आदि।" यहाँ पुनः, हम ब्रह्म को जल में लवण के समान सर्वत्र व्याप्त बता सकते हैं, और अद्वैतवादी सब पदार्थों को लवण-युक्त जल कह सकते हैं, जबकि आर्य-समाजी दो तत्त्वों-जल और नमक - को मिश्रित मानेंगे। अपर व्याख्या में उपदेश है- जिस प्रकार नमक जल में सर्वत्र पहुँच जाता है, और सूक्ष्म होने से नहीं दीखता, उसी प्रकार सूक्ष्म जीवात्मा प्राकृतिक शरीर में फैल जाता है, परन्तु इन्द्रियों को अनुपलब्ध रहता है।

फिर उद्दालक कहते हैं (6/14/1-3), "जैसे कोई व्यक्ति गन्धार देश से आँखों पर पट्टी बाँधकर लाया जाए और उसको किसी निर्जन स्थान में छोड़ दिया जाए, तो वह सब ओर मुख करके चिल्ला उठेगा कि मैं यहाँ बद्धनेत्र लाया गया हूँ और बद्धनेत्र ही छोड़ दिया गया हूँ (सो घर वापस जाने में कोई मेरी सहायता करे)। तब उसकी जब आँखों से पट्टी कोई निकाल दे और उससे बोले गन्धार उस ओर है, तब वह मेधावी पण्डित गांव गांव पूछता हुआ गन्धार वापस पहुँच जायेगा। इसी प्रकार, हे सोमय श्वेतकेतु! तू यहाँ (इस संसार में) उस पुरुष को जान जिसके पास आचार्य है। उसको उतनी ही देर है, जब तक वह छूट न जाए। उसके बाद वह (घर) प्राप्त कर लेता है।" यहाँ अधिकतर बातें अनकही छोड़ दी गई हैं। सो अर्थ लिए गए हैं कि ब्रह्म को न देखते हुए मनुष्य को आचार्य ब्रह्म-प्राप्ति का मार्ग दिखा देता है, जिससे वह शरीर से छूटते ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अद्वैतवादियों को भी इस व्याख्या से कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु दूसरे अर्थ किए जाए, तो वे अत्यन्त गूढ़ हो जाते हैं- जिस प्रकार मनुष्य के नेत्रों पर पट्टी बन्धी होने पर वह अपना अता-पता खो देता है, उसी प्रकार शरीर में जीवात्मा अविद्या की पट्टी लगा कर आता है, जिससे वह अपने को शरीर समझ बैठता है, और अपने को ही नहीं देख पाता। जब वह घाट-घाट के आचार्यों के सान्निध्य में विद्या के द्वारा पट्टी खुलवाता है, तो उसको अपनी स्वतन्त्र सत्ता का बोध होता है- वो घर वापस लौट आता है। सो, जीवात्मा को उतनी ही देर है, जब तक उसकी कोई यह पट्टी न खोल दे। फिर वह **अपने** को पा लेता है।

उपर्युक्त तथ्यों से आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि कौन सी व्याख्या सभी उपमाओं के रहस्य को सही-सही उजागर करती है और हर उपमा का सुन्दर अर्थ बतलाती है, और किन अर्थों को बलात् शब्दों पर लगाया गया है। आगे के तीन खण्डों में भी यह प्रकरण चलता है, और वहाँ भी यही अर्थ अधिक समीचीन हैं, यह आप पता कर सकते हैं। निर्णय आप स्वयं करें। ❑❑

thearyasamaj.org

पत्रों के आइने में भारत का संन्यासी (2)

(राजेशार्य अट्टा)

प्रिय पाठकवृन्द! पिछले लेख में भारत के संन्यासी के विदेशी धरती से लिखे कुछ पत्रों की कुछ पंक्तियाँ दर्शायी थीं। अब उससे आगे देखते हैं-

16. कुमारी मेरी हेल के लिए - लंदन से

...अध्यापक मैक्समूलर के साथ के साथ बहुत अच्छी तरह भेंट हुई। वे ऋषि जैसे हैं- वेदान्त की भावनाओं से पूर्ण हैं। ... बहुत दिनों से ही मेरे गुरुदेव के प्रति वे अत्यन्त श्रद्धा रखते हैं। ... भारत सम्बन्धी विविध विषयों में उनके साथ लम्बी आलोचना हुई। हाय! हाय, भारत के प्रति उनके प्रेम का आदर्शन भी यदि मुझमें होता!... (उस जर्मनी के ऋषि ने ही आर्यों के विदेशी आक्रमणकारी होने का सिद्धान्त दिया था। अपने गुरुदेव की जीवनी लिखवाने वाली संन्यासी उस सिद्धान्त के विपरीत भी तो लिखवा सकता था।)

17. स्वामी रामकृष्णानंद के लिए - लन्दन से

श्री रामकृष्ण देव के सम्बन्ध में मैक्समूलर का लेख आगामी माह में प्रकाशित होगा। वे उनकी एक जीवनी लिखने के लिए राजी हुए हैं। उनकी सारी उक्तियों को क्रमबद्ध रूप से लिखकर भेजो...। बुद्धिपूर्वक उन स्थलों में यथासम्भव अन्य वाक्यों का प्रयोग करना। 'कामिनी-कांचन' के स्थल पर 'काम-कांचन' लिखना- अर्थात् उनके उपदेशों में सार्वजनिक भावनाएं प्रकट होनी चाहिए। यह पत्र और किसी को दिखाने की आवश्यकता नहीं है। (देखिये, वास्तविकता कैसे छिपाई जाती है) ... मुझे अपने देश लौटने से क्या लाभ है? यह लन्दन दुनियाभर का केन्द्र है। भारत का हतपिण्ड यही है।...

18. श्री ई.टी. स्टर्डी के लिए - स्विट्जरलैण्ड से

आज सुबह प्राध्यापक मैक्समूलर महोदय का पत्र मिला। उससे पता चला कि श्री रामकृष्ण संबन्धी उनका लेख 'नाइन्टीन्थ सेंचुरी पत्रिका' के अगस्त के अंक में प्रकाशित हुआ है।... उन्होंने उस लेख के बारे में मेरा अभिमत माँगा है। ... मैक्समूलर साहब हमारी कार्यप्रणाली से परिचित होना चाहते हैं...। उन्होंने अधिकाधिक सहायता प्रदान करने का वचन दिया है तथा श्री रामकृष्ण परमहंस देव सम्बन्धी एक पुस्तक लिखने को वे प्रस्तुत हैं।

"सेवितव्यो महान् वृक्षः...।"

19. श्रीयुत् आलासिंगा के लिए - स्विट्जरलैंड से

मैक्समूलर साहब का श्रीरामकृष्ण सम्बन्ध लेख 'नाइन्टीन्थ सेञ्चुरी' में प्रकाशित हुआ है।... वे मुझे अत्यनत सुन्दर पत्र लिखते हैं। श्रीरामकृष्ण देव की एक बड़ी जीवनी लिखने के लिए वे सामग्री चाहते हैं।...

20. श्रीयुत आलासिंगा के लिए - स्विट्जरलैंड से

मैंने मैक्समूलर का लेख पढ़ा।... वह लेख अच्छा है। अब उन्होंने मुझे एक अच्छा सा पत्र भेजा है, जिसमें श्रीरामकृष्ण की जीवनी लिखने का प्रस्ताव किया है। मैंने अभी उन्हें बहुत कुछ सामग्री दे दी है; परन्तु भारत से और आने की आवश्यकता है।...

21. श्री जे०जे० गुडविन के लिए - स्विट्जरलैंड से

मुझे आघात पहुँचाने की देव या दानव किसी की भी शक्ति नहीं है। इसलिए निश्चिन्त रहो।...

22. कुमारी जोसेफिन के लिए - इंग्लैण्ड से

श्रीमती -'स' के साथ आज रास्ते में भेंट हुई। आजकल वे मेरे भाषण सुनने नहीं आती हैं। यह उनके लिए उचित ही है क्योंकि अत्यधिक दार्शनिकता भी ठीक नहीं है।

thearyasamaj.org

23. कुमारी एलन वाल्डो के लिए - इंग्लैण्ड से

प्राध्यापक मैक्समूलर अब मेरे मित्र हैं। मुझ पर लन्दन की छाप लग चुकी है।

साखानन्द के सम्बन्ध में कोई डर नहीं है - वर्तमान भारत के सर्वश्रेष्ठ योगी का आशीर्वाद उन्हें प्राप्त है।

(अगला पत्र) ... क्या आपने प्राध्यापक मैक्समूलर रचित श्रीरामकृष्ण सम्बन्धी लेख पढ़ा है? यहाँ पर इंग्लैण्ड में प्रायः सभी लोग हमारे सहायक बनते जा रहे हैं।..."

24. श्रीयुत आलासिंगा के लिए - लंदन से

... तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि मेरे कार्य अन्तर्राष्ट्रीय हैं और 'केवल भारतीय' नहीं...।"

25. स्वामी ब्रह्मानंद के लिए - फ्लोरेन्स से

...मजूमदार (जिसकी पत्रिका को पढ़कर मैक्समूलर ने रामकृष्ण परमहंस के विषय में लेख लिखा था) के पागलपन पर कोई ध्यान न देना। इसमें कोई संदेह नहीं है कि ईर्ष्या से उसका दिमाग बिगड़ चुका है।...

... परस्पर विवाद करना तथा आपस में निन्दा करना हमारी जाति का खास स्वभाव है। आलसी, कर्महीन, कटुभाषी, ईर्ष्या परायण, डरपोक तथा विवादप्रिय- यही तो हमारी जाति के लोगों का परिचय है। मेरा मित्र कहकर अपना परिचय देने से पहले इनको त्यागना होगा।...

मुझे पता चला है कि मजूमदार ने यह लिखा है कि 'ब्रहनवादिन' पत्रिका में प्रकाशित श्री रामकृष्ण के उपदेश यथार्थ नहीं हैं, मिथ्या हैं। यदि ऐसा ही है तो सुरेश दत्त तथा रामबाबू को 'इण्डियन मिरर' में इसका प्रतिवाद करने को कहना।... इन मूर्खों की ओर कोई ध्यान न देना।... उन्हें चिल्लाने दो।..."

26. श्रीयुत आलासिंह के लिए - लंदन से

... मैक्समूलर के साथ गाढ़ी मित्रता हो रही है। मैं शीघ्र ही ऑक्सफोर्ड में दो व्याख्यान देने वाला हूँ।..."

27. श्रीयुत आलासिंगा के लिए - अमेरिका से

... कोई भी सम्प्रदाय चाहे वह बुरा हो या भला, उसके विरुद्ध 'ब्रह्मवादिन' में कोई लेख प्रकाशित नहीं होना चाहिए। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि प्रचारकों के साथ जानबूझकर सहानुभूति दिखानी चाहिए। पुनः तुम लोगों को मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि उक्त पत्र इतना अधिक विशेष प्रिय बन चुका है कि यहाँ पर उसकी ग्राहक संख्या बढ़ने की आशा नहीं है।..."

28. श्री शरदचन्द्र चक्रवर्ती के लिए - दार्जिलिंग से

... तब मैं उस लोकगुरु महासमन्वयाचार्य श्री 108 रामकृष्ण देव से प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे हृदय में वे आविर्भूत हों।..."

29. श्री रामकृष्णानंद के लिए - दार्जिलिंग से

... इस समय विलगिरी के भवन में ही श्रीरामकृष्ण देव की स्थापना कर पूजा आदि करते रहो...।

राधाकृष्ण प्रेम सम्बन्धी किसी प्रकार की भूल नहीं होनी चाहिए। यह ध्यान रखना कि युवक-युवतियों के लिए राधा कृष्ण लीला एकदम विषतुल्य है। खासकर विलगिरी इत्यादि रामनुजी लोग रामोपासक हैं, उनके विशुद्ध भाव नष्ट न हो पाए।

(जब राधाकृष्ण प्रेम लीला इतनी कामोत्तेजक है, तो ऐसे ग्रन्थों का इस संन्यासी ने विरोध क्यों नहीं किया? कहीं संन्यासी जी को यह डर तो नहीं लगा कि ऐसा करने से हिन्दुओं में उनके प्रति पूज्य भाव समाप्त हो जाएगा! आश्चर्य है हम धर्म के नाम पर सब प्रकार की गन्दगी ढोने को तैयार हैं! सत्य के लिए विष-पान, गाली-गलोच, ईंट-पत्थर आदि सब कुछ सहन करने वाला दयानन्द जैसा निर्भीक संन्यासी तो काई विरला ही होगा।)

30. भारती की सम्पादिका के लिए - दार्जिलिंग से

thearyasamaj.org

... आधी सदी से समाज सुधार की धूम मच रही है। मैने दस वर्षो तक भारत के विभिन्न स्थानों में घूमकर देखा कि देश में समाज-सुधारक सभाओं की बाढ़-सी आई हैं परन्तु जिनका रुधिर शोषण करके हमारे 'भद्र लोगों' ने अपना यह खिताब (समाज-सुधारक) प्राप्त किया और कर रहे हैं, उन बेचारों के लिए एक भी सभा नजर न आई। मुसलमान कितने सिपाही लाये थे? यहाँ अंग्रेज कितने हैं? चांदी के छः सिक्कों के लिए अपने बाप और भाई के गले पर चाकू फेरने वाले लाखों आदमी सिवा भारत के और कहाँ मिल सकते हैं? सात सौ वर्ष के मुसलमान रियासत में छः करोड़ मुसलमान और सौ वर्ष के ईसाई राज्य में बीस लाख ईसाई क्यों बने? मौलिकता ने बिल्कुल देश को क्यों त्याग दिया है?...

(संन्यासी के मन में देश की अधोगति को लेकर पीड़ा तो बहुत है, पर वे उसके उत्थान के किसी भी कार्य (समाज सुधार) को करने के पक्ष में भी नहीं है, यह हमने पिछले पत्रों में देखा था। उल्टे, समाज सुधारकों पर व्यंग्य भी कस दिये; उन्हें गरीबों का रक्त चूसने वाला भी बता दिया और मुसलमान, ईसाइयों की संख्या बढ़ने का कारण भी उनसे पूछ लिया।सुधारों का मूल यदि शिक्षा है तो उसे भी आर्य समाज जैसी संस्था ने 1885 से प्रारम्भ कर दिया था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ज्योतिबा फूले आदि भी इस कार्य में लगे हुए थे। फिर भी संन्यासी ने सुधारकों पर आक्रमण कर दिया। भारत के लोगों का हत्यारा कहने में भी संन्यासी का भारत-प्रेम प्रकट हो रहा था क्या?)

पाठक जानते हैं कि प्रोफेसर मैक्समूलर जर्मनी का एक ऐसा संस्कृतज्ञ था, जिसने सायण आदि के वेदभाष्य का सहारा लेकर अंग्रेजी में अनुवाद (भाष्य) किया था। इस भाष्य का उद्देश्यों वेदों की हीनता सिद्ध करना था। यह सब उसने लॉर्ड मैकाले से धन पाने के लिए किया था। उसी के दिये विचार कि आर्य मध्य एशिया से भारत में आये थे, को स्वतंत्रता के बाद भी भारत ढो रहा है और वैदिक विद्वानों का बहुत सा समय व परिश्रम उस मिथ्या किले को ढहाने में नष्ट हो रहा है। स्वामी विवेकानन्द भी आर्यों को भारत का मूल निवासी मानते थे, पर जिस उत्सुकता से उन्होंने प्रो. मैक्समूलर से अपनी गुरु की जीवनी लिखवाई, उसका शतांश भी मिथ्या सिद्धान्त को बदलवाने (लिखवाने) में नहीं दिखाई।

वास्तव में मैक्समूलर की वेद और भारत के प्रति धारणा बदली थी तो स्वामी दयानन्द के ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका को पढ़कर ही, पर उसने जीवनी लिखी रामकृष्ण परमहंस की। इन पत्रों से स्पष्ट है कि वे न तो रामकृष्ण से प्रभावित थे और न विस्तार से जानते थे। यह तो स्वामी विवेकानन्द की वाक्पटुता का प्रभाव था कि वे उनकी जीवनी लिखने को राजी हुए। मैक्समूलर की मत्रता पाकर भारत के संन्यासी ने अपने आपको जिस प्रकार गौरवान्वित अनुभव किया, उससे भारत के संन्यासी का कद घटा है।

प्रबुद्ध पाठक! क्या आपने विचार किया कि अपने गुरु को अवतार सिद्ध करने के लिए स्वामी विवेकानन्द ने राम, कृष्ण, बुद्ध आदि को काल्पनिक कहकर भारत के प्राचीन इतिहास (रामायण, महाभारत) पर प्रश्न-चिह्न लगा दिया। बाल-विवाह जैसी कुप्रथा के लिए प्राचीन ऋषियों को दोषी बना दिया। समाज सुधार के लिए एक तिनका भी नहीं तोड़ा और भारतीय समाज की जी-भर की निन्दा की। फिर भी भारत का उदार हिन्दू समाज उन्हें सिर-आँखों पर रखता है और स्वामी दयानन्द जैसे समाज सुधारक योगी को गालियाँ देता है। समझ नहीं आता, इसे उदारता कहूँ या संकीर्णता अथवा अज्ञानता!

❑❑

thearyasamaj.org

स्वामी श्रद्धानन्द एवं शुद्धि आंदोलन

(डॉ. विवेक आर्य)

आधुनिक भारत में "शुद्धि" के सर्वप्रथम प्रचारक स्वामी दयानन्द थे तो उसे आंदोलन के रूप में स्थापित कर सम्पूर्ण हिन्दू समाज को संगठित करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द थे। सबसे पहले एक मुसलमान युवक की शुद्धि स्वामी दयानंद ने अपने देहरादून प्रवास के समय की थी जिसका नाम अलखधारी रखा गया थ। स्वामी जी के निधन के पश्चात पंजाब में विशेष रूप से मेघ, ओड और रहतिये जैसे निम्न और पिछड़ी समझी जाने वाली जातियों का शुद्धिकरण किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य उनकी पतित, तुच्छ और निकृष्ट अवस्था में सामाजिक और धार्मिक सुधार करना था। आर्यसमाज द्वारा चलाये गये शुद्धि आंदोलन का व्यापक स्तर पर विरोध हुआ क्योंकि हिन्दू जाति सदियों से कूपमण्डूक मानसिकता के चलते सोते रहना अधिक पसंद करती थी। आगरा और मथुरा के समीप मलकाने राजपूतों का निवास था, जिनके पूर्वजों ने एक आध शताब्दी पहले ही इस्लाम की दीक्षा ली थी। मलकानों के रीति-रिवाज अधिकतर हिन्दू थे और चौहान, राठौड़, गोत्र के नाम से जाने जाते थे। 1922 में क्षत्रिय सभा मलकानों को राजपूत बनाने का आवाहन कर सो गई मगर मुसलमानों में इससे पर्याप्त चेतना हुई एवं उनके प्रचारक गाँव-गाँव घूमने लगे। यह निष्क्रियता स्वामी श्रद्धानन्द की आँखों से छिपी नहीं रही। 11 फरवरी 1923 को भारतीय शुद्धि सभा की स्थापना करते समय स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा शुद्धि आंदोलन आरम्भ किया गया। स्वामी जी द्वारा इस अवसर पर कहा गया कि जिस धार्मिक अधिकार से मुसलमानों को तब्लीग और तंजीम का हक है उसी अधिकार से उन्हें अपने बिछुड़े भाइयों को वापिस अपने घरों में लौटाने का हक है। आर्यसमाज ने 1923 के अंत तक 30 हजार मलकानों को शुद्ध कर दिया।

मुसलमानों में इस आंदोलन के विरुद्ध प्रचंड प्रतिक्रिया हुई। जमायत-उल-उलेमा ने बम्बई में 18 मार्च 1923 को मीटिंग कर स्वामी श्रद्धानंद एवं शुद्धि आंदोलन की आलोचना कर निंदा प्रस्ताव पारित किया। स्वामी जी की जान का खतरा बताया गया मगर उन्होंने परमपिता ही मेरा रक्षक है, मुझे किसी अन्य रखवाले की जरूरत नहीं है कहकर निर्भीक सन्यासी होने का प्रमाण दिया। कांग्रेस के ही राजगोपालाचारी, मोतीलाल नेहरू एवं पडित जवाहरलाल नेहरू ने धर्मपरिवर्तन को मौलिक अधिकार मानते हुए तथा शुद्धि के औचित्य स्वीकार करते हुए भी तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन के सन्दर्भ में उसे असामयिक बताया। शुद्धि सभा गठित करने एवं हिन्दुओं को संगठित करने का स्वामी जी का ध्यान 1912 में उनके कलकता प्रवास के समय आकर्षित हुआ था जब कर्नल यू. मुखर्जी ने 1911 की जनगणना के आधार पर यह सिद्ध किया कि अगले 420 वर्षों में हिन्दुओं की अगर इसी प्रकार से जनसंख्या कम होती गई तो उनका अस्तित्व मिट जायेगा। इस समस्या से निपटने के लिए हिन्दुओं का संगठित होना आवश्यक था और संगठित होने के लिए स्वामी जी का मानना था कि हिन्दू समाज को अपनी दुर्बलताओं को दूर करना चाहिए। सामाजिक विषमता, जातिवाद, दलितों से घृणा, नारी उत्पीड़न आदि से जब तक हिन्दू समाज मुक्ति नहीं पा लेगा, तब तक हिन्दू समाज संगठित नहीं हो सकता।

इसी बीच हिन्दू और मुसलमानों के मध्य खाई

thearyasamaj.org

बराबर बढती गई। 1920 के दशक में भारत में भयंकर हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। केरल के मोपला, पंजाब के मुल्तान, कोहाट, अमृतसर, सहारनपुर आदि दंगों ने अंतर और बढ़ा दिया। इस समस्या पर विचार करने के लिए 1923 में कांग्रेस ने एक बैठक का आयोजन किया जिसकी अध्यक्षता स्वामी जी को करनी पड़ी। मुसलमान नेताओं ने इस वैमनस्य का कारण स्वामी जी द्वारा चलाये गये शुद्धि और हिन्दू संगठन को बताया। स्वामी जी ने सांप्रदायिक समस्या का गंभीर और तथ्यात्मक विश्लेषण करते हुए दंगों का कारण मुसलमानों की संकीर्ण सांप्रदायिक सोच बताया। इसके पश्चात भी स्वामी जी ने कहा कि मैं आगरा से शुद्धि प्रचारकों को हटाने को तैयार हूँ, अगर मुस्लिम उलेमा अपने तब्लीग के मौलवियों को हटा दे। परन्तु मुस्लिम उलेमा न माने।

इसी बीच स्वामी जी को ख्वाजा हसन निजामी द्वारा लिखी पुस्तक 'दाइए-इस्लाम' पढ़कर हैरानी हुई। इस पुस्तक को चोरी छिपे केवल मुसलमानों को उपलब्ध करवाया गया था। स्वामी जी के एक शिष्य ने अफ्रीका से इसकी प्रति स्वामी जी को भेजी थी। इस पुस्तक में मुसलमानों को हर अच्छे-बुरे तरीके से हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की अपील निकाली गई थी। हिन्दुओं के घर-मुहल्लों में जाकर औरतों को चूड़ी बेचने से, वेश्याओं और ग्राहकों में, नाई द्वारा बाल काटते हुए इस्लाम का प्रचार करने एवं मुसलमान बनाने के लिए कहा गया था। विशेष रूप से 6 करोड़ दलितों को मुसलमान बनाने के लिए कहा गया था जिससे मुसलमान जनसंख्या में हिन्दुओं के बराबर हो जायें और उससे राजनैतिक अधिकारों की माँग की जा सके। स्वामी जी ने निजामी की पुस्तक का पहले 'हिन्दुओं सावधान, तुम्हारे धर्म दुर्ग पर रात्रि मे छिपकर धावा बोला गया है'' के नाम से अनुवाद प्रकाशित किया एवं इसका उत्तर ''अलार्म बेल अर्थात खतरे का घंटा' के नाम से प्रकाशित किया। इस पुस्तक में स्वामी जी ने हिन्दुओं को छुआछूत का दमन करने और समान अधिकार देने को कहा जिससे मुसलमान लोग दलितों को लालच भरी निगाहों से न देखें। इस बीच कांग्रेस के काकीनाडा के अध्यक्षीय भाषण में मुहम्मद अली ने 6 करोड़ अछूतों को आधा आधा हिन्दू और मुसलमान के बीच बाँटने की बात कहकर आग में घी डालने का कार्य किया।

महात्मा गाँधी भी स्वामी जी के गंभीर एवं तार्किक चिंतन को समझने में असमर्थ रहे एवं उन्होंने यंग इंडिया के 29 मई 1925 के अंक में 'हिन्दु मुस्लिम-तनाव : कारण और निवारण' शीर्षक से एक लेख में स्वामी जी पर अनुचित टिप्पणी कर डाली। उन्होंने लिखा -

''स्वामी श्रद्धानन्द जी भी अब अविश्वास के पात्र बन गये हैं। मैं जानता हूँ कि उनके भाषण प्रायः भड़काने वाले होते हैं। दुर्भाग्यवश वे यह मानते हैं कि प्रत्येक मुसलमान को आर्य धर्म में दीक्षित किया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अधिकांश मुसलमान सोचते हैं कि किसी न किसी दिन हर गैरमुस्लिम इस्लाम को स्वीकार कर लेगा। श्रद्धानन्द जी निडर और बहादुर हैं। उन्होंने अकेले ही पवित्र गंगातट पर एक शानदार ब्रह्मचर्य आश्रम (गुरुकुल) खड़ा कर दिया है। किन्तु वे जल्दबाज हैं और शीघ्र ही उत्तेजित हो जाते हैं। उन्हें आर्यसमाज से ही यह विरासत में मिली हैं। स्वामी दयानन्द पर आरोप लगाते हुए गाँधी जी लिखते हैं ''उन्होंने संसार के एक सर्वाधिक उदार और सहिष्णु धर्म को संकीर्ण बना दिया।

गाँधी जी के लेख पर स्वामी जी ने प्रतिक्रिया लिखी कि ''यदि आर्यसमाज अपने प्रति सच्चे हैं तो महात्मा गाँधी या किसी अन्य व्यक्ति के आरोप और आक्रमण भी आर्यसमाज की प्रवृतियों में बाधक नहीं बन सकते।

स्वामी जी सधे कदमों से अपने लक्ष्य की ओर

thearyasamaj.org

बढ़ते रहे। एक ओर मौलाना अब्दुल बारी द्वारा दिए गए बयान, जिसमें इस्लाम को न मानने वालों को मारने की वकालत की गई थी के विरुद्ध महात्मा गाँधी जी की प्रतिक्रिया पक्षपातपूर्ण थी। गाँधी जी अब्दुल बारी को 'ईश्वर का सीदा सादा बच्चा' और 'एक दोस्त' के रूप में सम्बोधित करते हैं जबकि स्वामी जी द्वारा की गई इस्लाम कट्टरता की आलोचना उन्हें अखरती हैं। गांधी जी ने कभी भी मुसलमानों की कट्टरता की आलोचना नहीं की और न ही उनके दोषों को उजागर किया। इसके चलते कट्टरवादी सोच वाले मुसलमानों का मनोबल बढ़ता गया एवं सत्य एवं असत्य के मध य वे भेद करने में असफल हो गए। मुसलमानों में स्वामी जी के विरुद्ध तीव्र प्रचार का यह फल निकला कि एक मतान्ध व्यक्ति अब्दुल रशीद ने बीमार स्वामी श्रद्धानन्द को गोली मार दी उनका तत्काल देहांत हो गया।

स्वामी जी का उद्देश्य विशुद्ध धार्मिक था न कि राजनैतिक। हिन्दू समाज में समानता उनका लक्ष्य था। अछूतोद्धार, शिक्षा एवं नारी जाति में जागरण कर वह एक महान समाज की स्थापना करना चाहते थे। आज आर्यसमाज का यह कर्तव्य है कि उनके द्वारा छोड़े गए शुद्धि चक्र को पुनः चलाये। यह तभी संभव होगा जब हम मन से दृढ़ निश्चय करें कि आज हमें जातिवाद को मिटाना है और हिन्दूजाति को संगठित करना है।

शंका समाधान

शंका- मीडिया धर्म को अन्धविश्वास का पर्याय बता रहा है एवं यह दिखाने का प्रयास कर रहा हैं कि आस्तिक से भले तो नास्तिक हैं। क्योंकि न लोग आस्तिक होते और न ही अन्धविश्वास को बढ़ावा मिला। प्रश्न ये उठता है कि क्या वास्तव में आस्तिकता से अन्धविश्वास/पाखण्ड को बढ़ावा मिलता है।

समाधान- आस्तिकता की परिभाषा क्या है?

सामान्य रूप से हम आस्तिकता की यह परिभाषा समझते हैं कि मनुष्य का अपने से किसी उच्च अदृष्ट शक्ति पर विश्वास रखना आस्तिकता कहलाता है अर्थात् एक ऐसी शक्ति जो मनुष्य से अधिक शक्तिशाली है, समर्थ है उसमें विश्वास रखना आस्तिकता कहलाता है। परन्तु यह परिभाषा अपूर्ण है और इसे पढ़कर हमारे मन में अनेक शंकाएं आती हैं। एक आतंकवादी व्यक्ति अल्लाह या ईश्वर के नाम पर हिंसा करता हैं, निर्दोष लोगों के प्राणों का हरण करता हैं क्या इसे आप आस्तिकता कहेंगे? हमारे देश के इतिहास को उठाकर देखिये कि हमारे देश में अनेक हिन्दू-मुस्लिम दंगे धर्म के नाम पर हुए हैं। यहाँ तक कि देश का १९४७ में विभाजन भी धर्म के नाम पर हुआ था। क्या इससे हम यह निष्कर्ष निकालें कि आस्तिकता दंगों, उपद्रवों आदि को जन्म देती है। इसी प्रकार से यूरोप के इतिहास में क्रूसेड युद्धों का कारण ईसाई और मुस्लिम समाज का संघर्ष था, वह भी धर्म के नाम पर हुआ। हमारे चारों ओर हम देखते हैं कि आस्तिकता के नाम पर अनेक अंधविश्वासों को बढ़ावा दिया जा रहा हैं। आशाराम बापू से लेकर रामपाल तक के कर्मों से सभी परिचित हैं एवं उनको मानने वाले सभी भक्तगण अपने आपको आस्तिक बताने से पीछे नहीं हटते हैं परन्तु समाज के लिए ये भक्तगण अंधविश्वासी लोगों की जमात के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। अन्य मत-मतान्तरों में देखे तो पाते हैं कि आस्तिकता के नाम पर हजारों निरीह प्राणियों की गर्दनों पर ईद के दिन छुरियाँ चलती हैं और ईश्वर के कारण संसार में प्राणियों को बिना कारण असमय मृत्यु को भोगना पड़ता हैं और इसका दोष क्या ईश्वर को देना चाहिए? क्या इससे यह निष्कर्ष निकालें कि

thearyasamaj.org

आस्तिकता समाज में अन्धविश्वास को जन्म देती है? यह शंका इसलिए उत्पन्न हुई क्योंकि हम आस्तिकता की परिभाषा ठीक से नहीं समझ पाये। आस्तिकता की परिभाषा में धार्मिकता का समावेश नहीं है। आस्तिक विश्वास से प्रभावित होकर उत्तम कर्म करना धर्म कहलाता है अर्थात् आस्तिकता के प्रभाव से मनुष्य उत्तम कर्म करे तभी वह आस्तिक है अन्यथा वह अंधविश्वासी है। अन्धविश्वास का मूल कारण अज्ञानता है एवं हिंसा, दंगे, उपद्रव आदि का मूल कारण स्वार्थ है। अब शंका यह उठती है कि आस्तिकता में अर्थात् ईश्वर में विश्वास रखने के क्या लाभ हैं?

इसका समाधान भी अत्यंत सरल है। ईश्वर में विश्वास रखने के अनेक लाभ हैं।

१. आदर्श शक्ति में विश्वास से जीवन में दिशा निर्धारण होता है।

२. सर्वव्यापक एवं निराकार ईश्वर में विश्वास से पापों से बचने की प्रेरणा मिलती है।

३. ज्ञान के उत्पत्तिकर्ता में विश्वास से ज्ञान प्राप्ति का संकल्प बना रहता है।

४. सृष्टि के रचनाकर्ता में विश्वास से ईश्वर की रचना से प्रेम बढ़ता है।

५. अभयता, आत्मबल में वृद्धि, सत्य पथ का अनुगामी बनना, मृत्यु के भय से मुक्ति, परमानन्द सुख की प्राप्ति, आध्यात्मिक उन्नति, आत्मिक शांति की प्राप्ति, सदाचारी जीवन आदि गुण की आस्तिकता से प्राप्ति होती है।

६. स्वार्थ, पापकर्म, अत्याचार, दुःख, रोग, द्वेष, ईर्ष्या, अहंकार आदि दुर्गुणों से मुक्ति मिलती है।

इसलिए आस्तिक व्यक्ति ईश्वर ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखने से जीवन में आध्यात्मिक उन्नति करता है। धर्म संस्कृत भाषा का शब्द है जोकि धारण करने वाली धृ धातु से बना है। "धार्यते इति धर्मः" अर्थात् जो धारण किया जाये, वह धर्म है। अथवा लोक-परलोक के सुखों की सिद्धि के हेतु सार्वजनिक पवित्र गुणों और कर्मों का धारण व सेवन करना धर्म हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि मनुष्य जीवन को उच्च व पवित्र बनाने वाली ज्ञानानुकूल जो शुद्ध सार्वजनिक मर्यादा पद्धति•है वह धर्म है।

आज जो लोग गुरुओं, मुल्ले मौलवियों, पादरियों की धर्मविरुद्ध बात का समर्थन धार्मिकता कहकर करते हैं वे आस्तिक नहीं अपितु अंधविश्वासी हैं। इसलिए अंधविश्वासी नहीं अपितु आस्तिक बनिए।

शंका- जब मेक्समूलर आदि पश्चिमी विद्वानों के वेद भाष्य उपलब्ध थे तो स्वामी दयानंद द्वारा नवीन वेद भाष्य करने जैसा श्रमसाध्य कार्य क्यों किया गया?

समाधान- इस शंका का समाधान स्वामी दयानंद और मेक्समूलर के वेद भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन से भली भाँति होता हैं। वेद शब्द का वर्णन होते ही आज के नौजवान या तो विदेशी विद्वानों जैसे मेक्समूलर, ग्रिफ्फिथ आदि को वेद आदि धर्म शास्त्रों को उनके योगदान के लिए प्रशंसित करते पाते हैं अथवा वैदिक धर्म के दूषित रूप आधुनिक पौराणिक मत को आँखों के सामने रखकर हमारे बहुत से अंग्रेजी शिक्षित युवक वेद मन्त्रों से घृणा करने लग जाते हैं। इसमें उन युवाओं का कसूर केवल यह है कि उन्होंने स्वयं वेदों का स्वाध्याय अथवा वेदों के अधिकारी विद्वानों से उनके वास्तविक सत्य का ग्रहण नहीं किया है अपितु पश्चिमी विद्वानों ने जो कुछ भी लिख दिया है उसका अंधाधुंध अनुसरण किया है। वेद विषय पर आज भी प्रायः सभी विश्व विद्यालयों में पश्चिमी विद्वानों के द्वारा किये कार्य पर ही शोध होता देखा जाता है। कहीं-कहीं राजा रमेश चन्द्र दत्त (RC Dutt) अथवा राजेन्दर लाल मित्र (Rajender Lal Mitra) जेसे भारतीय विद्वानों का वर्णन

thearyasamaj.org

आता है जो पश्चिमी विद्वानों का ही अनुसरण करते हुए दिखाई देते हैं। आधुनिक काल में वेद भाष्य विषय में सबसे क्रांतिकारी कदम स्वामी दयानंद द्वारा प्राचीन ऋषियों द्वारा जिस पद्यति से वेद भाष्य किया जाता था उसी पद्यति का अनुसरण करते हुए नवीन भाष्य संस्कृत और हिंदी में किया गया जिससे सामान्य जन वेद के मूल अर्थ को समझ सके। स्वामी दयानन्द ने वेद भाष्य करते हुए न केवल सायण महीधर के भाष्य का अवलोकन किया बलिक मेक्समूलर आदि के भाष्य का भी अवलोकन किया है। स्वामी दयानंद के अनुसार वेदों पर भाष्य करने के लिए सत्य प्रमाण, सुतर्क, वेदों के शब्दों का पूर्वापर प्रकरणों, व्याकरण आदि वेदांगों, शतपथ आदि ब्राह्मणों, पूर्वमीमांसा आदि शास्त्रों और शास्त्रान्तरों का यथावत बोध हो और परमेश्वर का अनुग्रह, उत्तम विद्वानों की शिक्षा, उनके संग से पक्षपात छोड़ के आत्मा की शुद्धि न हो तथा महिर्षी लोगों के किये गए व्याख्यानों को न देखें हों, तब तक वेदों के अर्थ का यथावत प्रकाश मनुष्य के हृदय में नहीं होता है। अपने कठिन अनुसन्धान से स्वामी दयानंद ने मेक्स मूलर आदि पश्चिमी विद्वानों के विषय में एक ही वाक्य में जिन देशों में कुछ भी नहीं वहां अरंडी को भी फसल के रूप में गिना जाता है, से उनके ज्ञान की उचित परीक्षा कर दी थी। पश्चिमी देशों के विद्वान् भी उसी प्रकार अविद्वानों के बीच में कम ज्ञान होते हुए भी श्रेष्ठ विद्वान गिने जाने लगे। सबसे बड़ी विडम्बना हमारे यहाँ के विद्वानों को नकार कर पश्चिमी विद्वानों का अँधा अनुसरण करने से न केवल वेद के ज्ञान का उचित प्रकाश होने से रह गया अपितु उसके स्थान पर अनेक भ्रांतियाँ फैला दी गयीं, जो पश्चिमी विद्वानों की ही देन थी। उदाहरण स्वरूप मेक्समूलर के. अनुसार आर्य लोगों को बहुत काल के पीछे ईश्वर का ज्ञान हुआ था और वेदों के प्राचीन होने का एक भी प्रमाण नहीं मिलता किन्तु इसके होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। मेक्समूलर के अनुसार ऋग्वेद के मन्त्रों को केवल भजनों का संग्रह मानते हैं जो कि जंगली वैदिक ऋषियों ने अग्नि, वायु, जल, मेघ आदि की स्तुति में बनाये थे और जिन्हें गाकर वे जंगलियों की भांति नाचा भी करते थे। सत्य यह है कि ईश्वर द्वारा वेद ज्ञान के माध्यम से प्राचीन में ही अपना ज्ञान मनुष्य जाति को करवा दिया था। इसी प्रकार एक अन्य भ्रान्ति यह है कि प्राचीन आर्य लोग अनेक देवताओं और भूतोंकी पूजा करते थे जबकि सत्य यह है कि अग्नि, वायु, इन्द्र आदि नामों से उपासना के लिए एक ही परमेश्वर का ग्रहण किया गया है। मेक्समूलर आदि पश्चिमी विद्वानों के अंग्रेजी मे वेदों पर कार्य करने में विश्वभर के गवेषकों का ध्यान वेदों की ओर आकर्षित तो हुआ पर इससे वेदों का हित होने के स्थान पर अहित हुआ क्योंकि इससे वेद में वर्णित सत्य, विज्ञान, ईश्वर का स्वरूप, मानव समाज के कर्तव्य आदि पर परिश्रम करने की बजाय वेदों में कौन-कौन सी व्यर्थ और निरर्थक बाते हैं (जिनका अस्तित्व ही नहीं है) इस पर पूरा ध्यान लगा दिया गया। वेदों को सचमुच बालकों की बुलबुलाहट तथा असभ्यों की घुरघुराहट ही समझ लिया गया। आलोचना का बाजार गरम हो गया। एक तरफ हमारे देश में वेदों के सम्बन्ध में निरर्थक व मिथ्या प्रचार हो गया, ईसाई समाज की संकीर्णता व पूर्वाग्रह भरी नीति सफल होने को थी, आर्यावर्त का दर्शन और ब्रह्म विद्या के साहित्य लुप्त होने के कगार पर थे, लाखों भारतीय वेदों पर अश्रद्धा उत्पन्न होने से नास्तिक अथवा ईसाई बनने को तत्पर हो उठे थे। ईश कृपा से यास्क, पाणिनि, पतंजलि और व्यास जैसे ऋषियों की तपोभूमि पर वेद रूपी भंवर में फँसी हुई नौका को निकालने के लिए एक माँझी ने प्रतिज्ञा कर अपने वेद भाष्य करने का प्रण किया उस माँझी का नाम स्वामी दयानंद था।

thearyasamaj.org

आईये मेक्समूलर महाशय द्वारा किये गए ऋग्वेद के भाष्य की तुलना अब हम स्वामी दयानंद द्वारा किये गए भाष्य से करते हैं जिससे पक्षपात रहित होकर सत्य का ग्रहण किया जा सके।

ऋग्वेद मंडल एक सूक्त ६ मंत्र १

मेक्समूलर- वे जो कि उसके चारों ओर खड़े हैं जब कि वह करता है प्रकाशमान लाल घोड़े को कसते हैं, आसमान में ज्योति चमकती है।

स्वामी दयानंद- जो मनुष्य की उस महान परमेश्वर को, जो कि हिंसा रहित, सुख देने वाला, सब जगत को जानने वाला तथा सब चराचर जगत में भरपूर हो रहा है, उपासना, योग द्वारा प्राप्त होते हैं, वे उस प्रकाश स्वरूप परमात्मा में ज्ञान से प्रकाशित होकर (आनंद धाम में) प्रकाशित होते हैं।

ऋग्वेद मंडल एक सूक्त ६ मंत्र २

मेक्स मूलर- वे जंगी रथ को जोड़ते हैं। दोनों ओर उसके (इन्द्र के) दोनों मन को भाने वाले घोड़े भूरा व वीर।

स्वामी दयानंद- जो विद्वान् सूर्य और अग्नि के सबके इच्छा करने योग्य अपने अपने वर्ण के प्रकाश करनेहारे वा गमन के हेतु दृढ़ विविध कला ओर जल के चक्र घूमने वाले पंखरूप यंत्रों से युक्त अच्छी प्रकार सवारियों में जुड़े हुए मनुष्य आदि को देश-देशांतर में पहुँचाने वाले आकर्षण और वेग तथा शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष रूप दो घोड़े जिनसे सबका हरण किया जाता है, इत्यादि श्रेष्ठ गुणों को पृथ्वी, जल और आकाश में जाने-आने के लिए अपने रथों में जोड़े।

ऋग्वेद मंडल एक सूक्त ६ मंत्र ३

मेक्समूलर- तू जो प्रकाश करता हैं जहाँ पर कि प्रकाश न था और रूप और मनुष्यो! जहाँ कि कोई रूप न था, उषाओं के साथ उत्पन्न हुआ है।

स्वामी दयानंद- हे मनुष्य लोगों! जो परमात्मा अज्ञानरूपी अंधकार के विनाश के लिए उत्तम ज्ञान तथा निर्धनता, दारिद्रय तथा कुरूपता- विनाश के सुवर्ण आदि धन और श्रेष्ठ रूप को उत्पन्न करता है, उसको तथा सब विद्याओं को जो ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल वरतने वाले हैं, उनसे मिल मिल कर जानकर प्रसिद्ध कीजिये तथा हे जानने की इच्छा रखने वाले मनुष्य! तू भी उस परमेश्वर के समागम से इस विद्या को अवश्य प्राप्त हो।

ऋग्वेद मंडल एक सूक्त ६ मंत्र ४

मैक्समूलर- उसके पश्चात् उन्होंने (मरुतों के) स्वभाव के अनुसार स्वयं पुनः नवजात शिशुओं का रूप धारण किया और अपना पवित्र नाम लेते हुए।

स्वामी दयानंद- जो जल सूर्य व अग्नि के संयोग से छोटा हो जाता है, उसको धारण कर मेघ के आकार का बनके वायु ही उसे फिर-फिर वर्पाता है, उसी से सबका पालन और सबको सुख होता है।

ऋग्वेद मंडल एक सूक्त ६ मंत्र ५

मैक्समूलर- तूने हे इन्द्र, शीघ्र चलने वाले मरुतों के, जो कि गढ़ को तोड़कर भी निकल जाते हैं, उनके छुपने के स्थान में भी चमकीली गउओं को पाया है।

स्वामी दयानंद- जेसे बलवान पावन अपने वेग से भारी-भारी दृढ़ वृक्षों को तोड़-फोड़ डालते हैं और उनको ऊपर नीचे गिराते रहते हैं, वैसे ही सूर्य भी अपनी किरणों से उनका छेदन करता रहता है, इससे वे ऊपर-नीचे गिरते रहते हैं, इसी प्रकार ईश्वर के नियम से सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाश को भी प्राप्त होते रहते हैं।

इन ५ मन्त्रों का हिंदी भाष्य यहाँ प्रस्तुत किया गया है, जिनसे पाठक यह निष्कर्ष आसानी से निकाल सकते हैं कि मेक्स मूलर महोदय का भाष्य न केवल शुष्क, निरर्थक, शुद्ध अर्थ का बोध न करने वाला है अपितु भ्रामक भी है।

वेदों का पूर्वाग्रह एवं अज्ञानता के कारण अशुद्ध भाष्य करने के बावजूद भी मेक्स मूलर की आत्मा में वेदों में वर्णित सत्य विद्या का कुछ-कुछ प्रकाश अपने

hearyasamaj.org

जीवन के अंतिम वर्षों में हुआ था, जिसका उदाहरण उन्हीं के द्वारा लिखे गए कुछ प्रसंग हैं-

१. "नहीं, प्रत्युत मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उपनिषदों तथा प्राचीन वेदांत दर्शन में प्रकाश की कुछ ऐसे किरणें विद्यमान हैं, जो कि उन अनेक विषयों पर प्रकाश डालेंगी जो कि हमारे हृदय के अत्यंत निकट हैं"- सन्दर्भ- Chips from a German Workshop- vol ƒ page ‡‡

२. "जिस प्रकार वर्तमान काल का इतिहास अधूरा है मध्य युग के इतिहास बिना, मध्यकालीन इतिहास अधूरा है बिना रोम के इतिहास के अथवा रोम का इतिहास अधूरा है बिना यूनान के इतिहास के, इसी प्रकार हम पता करते हैं कि इतिहास अधूरा समझा जावेगा बिना आर्य मानवता के उस प्रथम अध्याय (ऋग्वेद) के, जो कि हमारे लिए वैदिक साहित्य में सुरक्षित किया गया है"- सन्दर्भ- The origin of Religion- Page ƒ†‹

३. भारत के प्राचीन साहित्य की बात कुछ और ही प्रकार है... वह साहित्य हमारे लिए मनुष्य जाति की शिक्षा का अध्याय खोल देता है जिसका उदाहरण हमें कहीं अन्यत्र नहीं मिलता। जो व्यक्ति की अपनी भाषा अर्थात् विचारों की उन्नति का सम्मान करता है, जो व्यक्ति की धर्म तथा मानवों की सर्वप्रथम वैचारिक अभिव्यक्ति को मान देता है, जो व्यक्ति की इन विद्याओं की प्रथम नींव को जानने का प्रथम इच्छुक है, जिन्हें कि अर्वाचीन काल में ज्योतिष विद्या, छंद, व्याकरण व धातु के नाम से पुकारते हैं, जो व्यक्ति के दार्शनिक विचारों की आरंभिक अभिव्यक्ति को जानना चाहता हैं और साथ ही गृहस्थ, ग्रामीण तथा राजनैतिक जीवन आदि को, धार्मिक रीतियों, पुराण (ब्राह्मण ग्रन्थ) तथा समय के अनुसार चलने के आरंभिक प्रयत्नों को ज्ञात करना चाहता है, उसे भविष्य के लिए वैदिक कल के साहित्य पर वही ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जो कि यूनान, रोम तथा जर्मनी के साहित्य पर किया जाता है। सन्दर्भ- Indica what it can teach us- Max Mullter Page ‰‹-Š,

४. धर्म के सम्बन्ध में भाषा की भाँति कहा जा सकता है कि इसमें प्रत्येक नई बात पुरानी तथा प्रत्येक पुरानी बात नई है और कि सृष्टि के आदि से कोई धर्म सर्वथा नया नहीं निकला- सन्दर्भ- chips from a german workshop-preface page †

५. आधुनिक युग के लिए केवल एक ही कुंजी हैं अर्थात् अतीत काल- सन्दर्भ chips from a german workshop- page „

६. संसार का सच्चा इतिहास सदा कुछ व्यक्तियों का ही इतिहास हुआ करता है और जिस प्रकार हम हिमालय की ऊँचाई का अनुमान गौरीशंकर पर्वत (everest) से लगाते हैं, उसी प्रकार हमें इंडिया का सच्चा अनुमान वेदवक्ता कवियों, उपनिषदों के ऋषियों, वेदांत व सांख्य दर्शन के रचयिताओं तथा प्राचीन धर्म शास्त्रकारों से लेना चाहिए, न कि उन करोड़ों व्यक्तियों से जो कि अपने ग्राम में ही जन्म लेकर मर जाते हैं तथा जो कि एक पल के लिए भी अपने ऊँघने से, जीवन के स्वप्न से कभी जागृत ही नहीं हुए- India what it can teach us- Max Muller पेज ७६.

आज संसार में भोगवाद का बोलबाला हो गया हैं, चारों तरफ अशांति, मत-मतान्तर के झगड़े, आतंकवाद, गरीबी, भूखमरी आदि फैल रहे हैं। इस अशांत मानव जाति को प्रभु के सत्य ज्ञान अर्थात् वेद का सहारा मिल जाये तो समस्त मानव जाति का कल्याण हो जायेगा। मेक्समूलर आदि पश्चिमी विद्वानों का वेदभाष्य वेदों के यथार्थ सन्देश से जनमानस को परिचित करने में अक्षम था इसलिए स्वामी दयानंद द्वारा नवीन वेद द्वारा भाष्य करने जैसा श्रमसाध्य कार्य प्रारम्भ करना पड़ा था। स्वामी दयानंद असमय मृत्यु के कारण केवल सम्पूर्ण यजुर्वेद एवं ऋग्वेद का कुछ ही भाष्य कर सके थे अन्यथा उनका उद्देश्य चारों वेदों के भाष्य को पूर्ण करने का था।

thearyasamaj.org

आर./आर. नं० १६३३०/६७ जनवरी २०१५
Post in Delhi R.M.S
०५-११/१/२०१५
भार- ४० ग्राम

जनवरी 2015

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१२-१४
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2012-14

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

• प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
• विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
• स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.........................
ग्राम.........................
डा0.........................
जिला.........................

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य, ४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-६
मुद्रक : तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीताराम, दिल्ली-६